रामनरेश त्रिपाठी

अस्तर पर मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का दृश्य छपा है—जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा लिपिक व्याख्या का विवरण लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

रामनरेश त्रिपाठी

लेखक

डॉ. इंदरराज बैद 'अधीर'

साहित्य अकादेमी

Ramnaresh Tripathi : A monograph by Inderraj Baid 'Adheer' **on** the modern Hindi writer, Sahitya Akademi, New Delhi (1993)
Rs.15

प्रथम संस्करण : 1987
द्वितीय संस्करण : 1993

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालयः
रवीन्द्र भवन, 35, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली–110001
फोन:386626, 386621, 386623, 386088

विक्रय विभागः
'स्वाति' मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 फोनः 353297

क्षेत्रिय कार्यालयः
जीवनतारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23ए/44 एक्स डायमंड हार्बर रोड़, कलकत्ता 700053
फोनः 497405
गुणा बिल्डिंग, 304–305, अन्नासलाई तेनामपेठ, मद्रास 600013 फोन:454080
172, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400014 फोन:4135744
ए.डी.ए. रंगमदिर, 109- जे.सी.मार्ग, बंगलौर 560002 फोनः 221412

मूल्यः पन्द्रह रूपये

मुद्रकः
चमन एन्टरप्राइजिस
आर.69/1 रमेश पार्क, लक्ष्मी नगर, दिल्ली

अनुक्रम

1. जीवन-परिचय 7
2. साहित्य-सर्जना 27
मौलिक साहित्य 27
काव्य रचनाएँ 30
मुक्तक रचनाएँ 34
प्रबंध रचनाएँ 38
कथा-साहित्य 43
उपन्यास 46
चरित साहित्य 49
नाटक साहित्य 54
व्यंग्य 60
बाल वाङ्मय 62
3. बहुआयामी लेखन 69
साहित्येतिहास 69
समालोचना 71
हिन्दी साहित्य 74
संपादन 75
संकलन 79
भाषा 80
ज्ञान-विज्ञान का साहित्य 83
4. लोक साहित्य की सेवा 88
5. उपसंहार 97
परिशिष्ट-I चयनिका 100
परिशिष्ट-II संदर्भिका 108

1

जीवन परिचय

पंडित रामनरेश त्रिपाठी का जन्म मंगलवार, 4 मार्च 1889 ई. को उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले के कोइरीपुर नामक ग्राम में हुआ था। वर्तमान में यह गाँव सुलतानपुर जिले की इकाई है। आपके पिता पं. रामदत्त त्रिपाठी सरयूपारीय ब्राह्मण थे। वे बड़े धर्मनिष्ठ, साहसी और कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति थे। वे संस्कृत के अच्छे ज्ञाता और पौराणिक ग्रन्थों के नियमित पारायणिक थे। वे कर्म से एक सिपाही थे। भारतीय सेना में सूबेदार। प्रथम अफगान-युद्ध में उन्होंने अपनी वीरता की धाक जमाई थी। यों उनका पारिवारिक व्यवसाय खेती-बाड़ी था। रामनरेश त्रिपाठी को संघर्षों से जूझने की शक्ति अपने पिता से ही मिली थी। रामायण-भक्त पिता ने अपने तीनों पुत्रों—रामकुमार, रामनाथ और रामनरेश में रामचरितमानस के नियमित स्वाध्याय की लगन पैदा कर दी थी। ईश्वर-भक्ति, धर्म-निष्ठा और स्वाध्याय के जो बीज त्रिपाठी जी के बचपन में पड़े, वे जीवन भर पुष्पित-फलित होते रहे।

कवि की शिक्षा उन्हीं के गाँव की पाठशाला से आरम्भ हुई। कोइरीपुर की वर्नाक्यूलर स्कूल से उन्होंने आठवीं कक्षा उत्तीर्ण की। उन दिनों उर्दू का प्रचलन अधिक था, त्रिपाठी जी ने भी आरम्भ में उर्दू सीखी। नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापकों में से एक थे पं. रामनारायण मिश्र। वे स्कूलों के इंस्पेक्टर भी थे। उन्होंने त्रिपाठी जी को हिन्दी के अध्ययन की ओर प्रेरित किया। मिश्र जी के सुझाव पर ही पं. रामदत्त त्रिपाठी ने अपने पुत्र को हिन्दी सीखने की अनुमति दी। कुशाग्र बुद्धि छात्र को देखते ही मिश्र जी भाँप गये थे कि यह बालक आगे चलकर अपनी भाषा और साहित्य का यशस्वी लेखक बनेगा। घर में नित्य प्रात: मानस पाठ और दिन में स्कूल में हिन्दी का अध्ययन, त्रिपाठी जी के भाषा-संस्कार संवरने लगे। बचपन से ही कविता की ओर अधिक रुचि रही। उन्होंने तुलसी के अनेक दोहे कंठस्थ कर लिये। अपर प्राइमरी के दिनों से ही जिन पंक्तियों ने कवि को बहुत अधिक प्रभावित किया, उसका मार्गदर्शन किया और स्वावलम्बन-स्वाभिमान

का जिसे धन प्रदान किया, वे पंक्तियाँ थीं—"तुलसी कर पर कर धरौ, कर तर कर न धरौ। जा दिन कर तर कर धरौ, ता दिन मीत खरौ।" इस प्रकार दो-चार नहीं, सैकड़ों सूक्तियाँ उन्होंने अपने जीवन में आत्मसात् कर ली थीं। स्कूल में भी उन्हें साहित्यिक वातावरण ही मिला। त्रिपाठी जी के अध्यापक भी कविता करते थे। उनके पास कवीन्द्र वाटिका, रसिक-रहस्य आदि साहित्यिक-पत्रिकाएँ नियमित आती थीं जो त्रिपाठी जी को पढ़ने के लिए मिल जाया करती थीं। उन पत्रिकाओं से त्रिपाठी जी को रस मिलने लगा और उनमें काव्य-प्रेम अंकुरित होने लगा। उन्हीं दिनों अलीगढ़ से निकलने वाले 'शिक्षा प्रभाकर' में उनका एक लघु लेख प्रकाशित हुआ, जिस पर उन्हें स्कूल के डिप्टी इंस्पेक्टर से पुरस्कार भी मिला।

मिडिल तक की पढ़ाई पूरी करने के बाद त्रिपाठी जी ने जौनपुर की हाई स्कूल में प्रवेश लिया। वहाँ वे अंग्रेजी सीखने लगे। परन्तु पिता की अनिच्छा के कारण उन्होंने हाई स्कूल छोड़ दी और वे घर में ही संस्कृत का अध्ययन करने लगे। उनके चाचा स्थानीय पाठशाला में संस्कृत के शिक्षक थे। उन्हीं के पास रहकर उन्होंने संस्कृत का ज्ञान अर्जित किया। संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति उनके मन में जो श्रद्धा जागृत हुई वह जीवन-पर्यन्त बनी रही। अपनी शिक्षा पूरी करके वे अपने ही गाँव में अध्यापक बन गये, पर कुछ दिनों बाद उन्होंने स्कूल छोड़ दिया। अब उन्होंने लिखना आरम्भ कर दिया था। 'सरस्वती' साहित्य-जगत में समादृत होने लगी थी। त्रिपाठी जी उन्हें नियमित पढ़ने लगे। मैथिलीशरण गुप्त जी की 'भारत भारती' जो सरस्वती में खंडशः प्रकाशित होने लगी थी, ने उन्हें प्रभावित किया और वे उससे प्रेरणा पाकर कविता करने लगे। 'सरस्वती' में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उनकी प्रथम रचना 'हिन्दुओं की हीनता' प्रकाशित की।

कोइरीपुर से सटा हुआ ही है प्रतापगढ़। इस गाँव में पं. बलदेव तिवारी खेती का व्यवसाय करते थे। इन्ही की पुत्री उदयवंती देवी से त्रिपाठी जी का विवाह हुआ था। आगे चलकर इनकी छह संतानें हुईं—तीन पुत्र, आनन्द कुमार, बसंत कुमार और जयंत कुमार तथा तीन पुत्रियाँ, सुभद्रा, सुमित्रा और सावित्री। विवाहोपरान्त अपने पाँवों पर खड़े होकर जीविकोपार्जन करने की समस्या थी। मास्टरी उन्हें रास नहीं आयी। उनका युवा मानस भीतर ही भीतर उद्वेलित हो रहा था कुछ करने के लिए। जीवन-पथ पर आगे बढ़ने और अपने भविष्य-निर्माण के लिए उन्होंने कोइरीपुर से दूर जाने का निश्चय कर लिया। उन्नीस वर्ष की अवस्था तक उन्होंने दो ही शहर देखे थे जौनपुर और फ़ैजाबाद। कलकत्ते में उन दिनों उनके एक अन्य चाचा पं. रामस्वरूप रहा करते थे। वे कलकत्ता आ गये।

कलकत्ते में वे एक पंजाबी व्यापारी श्री टेकचन्द के सम्पर्क में आये। उनके

सात सौ रुपयों का खोया हुआ पर्स उन्हें लौटाकर त्रिपाठी जी ने अपनी ईमानदारी से उन्हें प्रभावित किया। वे उन्हीं के प्रतिष्ठान में ट्रैवलिंग सेलसमैन बन गये। श्री टेकचन्द कलकत्ता आर्य समाज के प्रधान थे। आर्य समाज का प्रभाव उन दिनों वृद्धि पर था। त्रिपाठी पर भी आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा। अध्ययन के लिए उनको पर्याप्त सामग्री वहाँ मिल जाती थी। कलकत्ते में ही एक और सज्जन से उनका परिचय हुआ। वे थे बाबू राधा मोहन गोकुल जी, जो 'सत्य सनातन' नामक पत्र चलाते थे। त्रिपाठी जी उनकी बैठक में नित्य जाया करते थे और वहाँ पर आनेवाली अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं को पढ़ा करते थे। इस प्रकार वे कलकत्ते की अनेक साहित्यिक विभूतियों और संस्थाओं के सम्पर्क में आये। वे बँगला-साहित्य की ओर भी आकृष्ट हुए। बंकिम और शरतचन्द्र की कृतियाँ उन्होंने बड़े मनोयोग से पढ़ीं। इस प्रकार कलकत्ता-प्रवास उनके लिए काफ़ी उपयोगी रहा, उनकी साहित्यिक अभिरुचि के विस्तार का कारण बना। परन्तु, बिक्रीकर्ता के रूप में घूमते-फिरते रहने से शुद्ध पौष्टिक भोजन की अनियमितता के फलस्वरूप इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और वे गम्भीर रूप से बीमार पड़ गये। उनके माता-पिता उन्हें देखने और लिवा ले जाने के लिए कलकत्ता आये। त्रिपाठी जी की अपने गाँव लौटने की इच्छा नहीं थी। वे कर्मक्षेत्र में जूझना चाहते थे, अत: वे अपने घर नहीं गये। संग्रहणी से ग्रस्त त्रिपाठी जी इलाज के लिए कलकत्ते के एक वरिष्ठ चिकित्सक डॉ. एस. के. बर्मन के पास गये। उन्होंने भी त्रिपाठी जी को कलकत्ता छोड़ने की राय दी। एक मारवाड़ी सज्जन बाबू कृष्णदास जी जालान ने उनकी यह हालत देखकर उन्हें फतेहपुर (मारवाड़) जाने की सलाह दी और कहा कि कोई बात नहीं है, मारवाड़ चले जाओ, वहाँ का जलवायु तुम्हें चंद ही दिनों में चंगा कर देगा। त्रिपाठी जी को बात जँची और उन्होंने कलकत्ता छोड़ने का निश्चय कर लिया।

फतेहपुर तत्कालीन जयपुर राज्य के अंतर्गत सीकर रियासत का एक छोटा-सा कस्बा था, चारों ओर रेतीले टीलों से घिरा। सँकरी गलियाँ, सेठ-साहूकारों की बड़ी हवेलियाँ और जगह-जगह बिखरी हुई गहरी बावड़ियाँ; फतेहपुर का आज भी लगभग ऐसा ही नक्शा है। बस्ती के बीच में शीतला माता का मंदिर था और मंदिर से जुड़ी थी धर्मशाला। बीस मील का रेतीला रास्ता ऊँट की पीठ पर पार कर त्रिपाठी जी फतेहपुर पहुँचे। ऊँटवाला उन्हें धर्मशाला के चबूतरे पर लिटा कर चला गया। मंदिर के पास ही नेवटिया-परिवार की बड़ी हवेली थी। विक्रमी सम्वत् 1966 की होली का मनोरम प्रभात त्रिपाठी जी के लिए नया जीवन लेकर आया। सेठ रामवल्लभ नेवटिया को प्रात: ही यह ख़बर मिली कि कोई परदेसी युवक रुग्ण स्थिति में चबूतरे पर लेटा हुआ है। सेठ जी का आदेश पाकर मुनीम जी ने त्रिपाठी जी को संभाला और उनकी देखभाल शुरू हुई। वे

नियमित मट्ठे का सेवन करते और सोगरे (बाजरे की रोटी) के साथ साँगरी का साग भोजन के रूप मे पाते थे। इस प्रकार खान-पान की अनुकूलता ने और मारवाड़ के हवा-पानी ने त्रिपाठी जी को कुछ ही दिनों में पूर्णतः स्वस्थ कर दिया।

फतेहपुर में त्रिपाठी जी को अनुकूल वातावरण मिला, वहाँ उनका मन लग गया। सेठ रामवल्लभ जी के पिताजी सेठ रामदयालु जी अपने युग के विलक्षण व्यक्ति थे। लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की उन पर अपार कृपा थी। वे परम धर्मनिष्ठ, अध्यवसायी और नियमित स्वाध्यायी थे। वे भागवत के पंडित और हिन्दी के कवि थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र से उनकी मित्रता थी और उनमें परस्पर पत्राचार भी होता रहता था। वे पुस्तकों के बड़े प्रेमी थे। हज़ारों पुस्तकें उनके ग्रंथागार में उपलब्ध थीं। प्रेमांकुर, बलभद्र-विजय और लक्ष्मण मंगल उनकी स्वरचित रचनाएँ थीं। ऐसे मनीषी का संसर्ग त्रिपाठी जी के लिए वरदान सिद्ध हुआ। चारों ओर पुस्तकों का अंबार, त्रिपाठी जी को मानो कुबेर का खज़ाना ही मिल गया। नियमित अध्ययन, साहित्यिक-चिंतन और अनुकूल पारिवारिक वातावरण ने कवि की प्रतिभा को खिलने का सुयोग प्रदान किया। वे नेवटिया परिवार के एक अंग ही बन गये। श्रीगोपाल नेवटिया और उनके भाइयों के मास्टर जी। उन्होंने सरस्वती पुस्तकालय की स्थापना की, जो आज भी उनके स्मारक के रूप में फतेहपुर में विद्यमान है। उन्होंने शिक्षा का प्रचार किया, अस्पताल खुलवाने के लिए सेठों को प्रेरणा दी और नवयुवकों के दिलों में समाज-सुधार की लौ लगा दी। आरंभ में, फतेहपुर के कट्टरपंथी लोगों ने 'समाजी' कह-कर उनकी खिल्ली उड़ायी, परन्तु संघर्षों से जूझने का व्रत पालने वाले रामनरेश इन बाधाओं से कहाँ विचलित होनेवाले थे! वे अपने सिद्धांतों पर अडिग थे और समाज को एक नया रूप देने के लिए कृत-संकल्प। उनका लक्ष्मीनाथ विद्यालय जागरण का केन्द्र बन गया। वे बच्चों में देशभक्ति के भाव अपनी कविताओं के माध्यम से भरने लगे। यथा—"विद्या पढ़कर द्रव्य कमाओ, देश-सुधार करो सुख पाओ। मेरी यह शिक्षा उर धारो, जीवन रामनरेश सुधारो।"

त्रिपाठी जी उन भाग्यशाली सारस्वत सपूतों में थे, जिन्होंने विश्व को कविता नहीं, कविता के रूप में मंत्र दिये हैं। विनय की उदात्त भावना को मुखर करती उनकी यह प्रार्थना जो सारे हिन्दी-जगत् की मंद्र-छवि बन गयी, फतेहपुर में ही उद्भूत हुई थी :

हे प्रभो आनंददाता! ज्ञान हमको दीजिए।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।
लीजिए हमको शरण में, हम सदाचारी बनें।
ब्रह्मचारी, धर्मरक्षक, वीरव्रत धारी बनें।

जिस अध्यापन-कार्य को वे कोइरीपुर में छोड़ आये थे, वही फतेहपुर में उनकी कीर्ति का कारण बना। वे नेवटिया परिवार के बच्चों के ही नहीं, बस्ती की अनेक तरुण प्रतिभाओं के प्रेरणा-स्रोत बन गये। विद्या-प्रेम, ईश्वर-भक्ति और देशानुराग के मंजुल भावों से उन्होंने छोटे-छोटे बच्चों को संस्कारित कर दिया। अपने 'मास्टर जी' के बारे में लिखे एक संस्मरण में श्री गोपाल नेवटिया ने कहा है—"हमारे पूर्वज सेठ मनसाराम की जो स्मृति में एक छत्री बनी हुई है, एक विशाल गोल गुंबद के नीचे एक कमरा, आजू-बाजू और छोटे कमरे तथा बरामदा। उस छत्री में रहने वाले मास्टरजी का और उनके शासन में पढ़ने वाले हम भाइयों का पचास वर्ष पुराना दृश्य, आज भी मेरी आँखों के आगे ज्यों का त्यों विद्यमान है।···हम बालक समझते नहीं थे कि मास्टर जी छत्री में अकेले सुबह चार बजे उठकर क्या लिखते हैं, क्यों लिखते हैं? इतना याद है, उन्होंने हमें "हे जगदीश, देव अविनाशी, दिव्य दयामय मंगलराशी—" रटाया था और 'टिक-टिक करती घड़ी रात-दिन हमको यही सिखाती—' सुनाया था। रामायण और महाभारत की कहानियाँ तो वे बहुत ही मनमोहक ढंग से सुनाते और बच्चों की कहानियों के तो वे खजाने थे।" इस प्रकार बच्चों के प्रेरक-शिक्षक के रूप में, कवि-लेखक के रूप में, और समाज-सुधारक के रूप में त्रिपाठी जी ने फतेहपुर में जो कार्य किया, वह अपने समय का अद्भुत क्रांतिकारी कार्य था। उन्होंने बच्चों में बड़ों के प्रति आदर का भाव पैदा किया, युवकों में मातृभूमि-प्रेम जागरित किया और समाज में व्याप्त अशिक्षा और अंधविश्वासों के व्यामोह को तोड़ने के लिए लोगों को प्रेरित-संगठित किया।

फतेहपुर उनकी सारस्वत साधना का प्रथम केंद्र था। त्रिपाठी जी यहाँ कोई पाँच बरस रहे। इस कालावधि में उन्होंने सैकड़ों कविताओं और अनेक कथा-पुस्तकों की सर्जना की। 'बालक सुधार शिक्षा' (1911), 'मारवाड़ी मनोरंजन' (वर्ष अमुद्रित), 'आर्य संगीत शतक' (1912) और 'कविता विनोद' (1914) की कविताएँ यहीं उद्भूत हुईं। फतेहपुर में ही त्रिपाठी जी ने 'वीरांगना' (1911) 'वीरबाला' (1911) तथा 'मारवाड़ी और पिशाचिनी' (1912 ई.) उपन्यास लिखे। 'दमयन्ती' (1914 ई.) की जीवनी भी यहीं लिखी गयी और 'भारतीय कथा अर्थात् हिन्दी महाभारत' का लेखन भी यहीं संपन्न हुआ था। रस-पिंगल की आरंभिक रचना 'पद्य प्रबोध' (1913 ई.) भी लिखी। इस प्रकार दूसरे दशक के पूर्वार्द्ध तक साहित्य की अनेक विधाओं में लेखन का विस्तार त्रिपाठी जी ने फतेहपुर ही में किया।

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी जी के नाम अपने पत्र में कभी त्रिपाठी जी ने लिखा था—"मैंने अपने विचार से स्वस्थ मनुष्य की आयु 80 वर्ष आँक रखी है, उसको मैंने चार भागों में बाँटा है। पहला भाग 25 वर्ष का है जिसमें जीवन का घर

बनाने के लिए ईंटा, चूना और लोहा-लक्कड़ जमा करना चाहिए। दूसरा भाग भी 25 वर्ष का है; इसमें घर बना लेना चाहिए। तीसरा भाग 20 वर्ष का है; इसमें जो बनाया है, जो कुछ किया-धरा है, उसका उपभोग करना चाहिए। चौथा भाग 10 वर्ष का है, जो पराधीनता है और जिसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता है कि वह कैसे बिताया जाय। (दे० सम्मेलन पत्रिका, श्रद्धांजलि अंक, पृ० 244-245)। त्रिपाठी जी इसी मान्यता पर जिये। फतेहपुर में अपने जीवन के पच्चीस वर्ष उन्होंने पूरे कर लिये थे। कोइरीपुर, कलकत्ता और फतेहपुर में रहकर उन्होंने भावी जीवन का पथ निर्धारित कर लिया था। स्वावलंबन और अध्यवसाय का महत्त्व वे जान चुके थे। वे कलकत्ता और फतेहपुर के मारवाड़ी व्यापारियों की उद्यमशीलता के मन्त्र-फल की मिठास की अनुभूति से पूरित-प्रेरित हो चुके थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और कविवर मैथिलीशरण गुप्त से उन्हें साहित्यिक-यात्रा के गंतव्य-बिन्दु तक पहुँचने के लिए प्रोत्साहन का पर्याप्त पाथेय मिल चुका था। लेखिनी को तो माँज ही चुके थे वे। राजपूताने के प्रेरक प्रसंगों ने उनके भावप्रवण हृदय को अभिव्यक्ति की अपूर्व संपदा से समृद्ध कर दिया था। समाज और देश के लिए समर्पित हो जाने की साध उनमें जग चुकी थी। जीवन के पच्चीस बरसों में उन्होंने वह सब एकत्रित कर लिया था, जिनसे साधना संपन्न हो सके।

1915 ई. में त्रिपाठी जी के पिता का स्वर्गवास हो गया। अब वे फतेहपुर से अपने गाँव लौट आये। अब उन पर पारिवारिक दायित्व बढ़ गया। परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। त्रिपाठी जी ने स्वतन्त्र व्यवसाय आरंभ करने का निश्चय कर लिया था। वे साहित्यकारों के तीर्थ प्रयाग चले आये। केवल जीविकोपार्जन ही उनका ध्येय नहीं था, भाषा और साहित्य के माध्यम से देश-सेवा भी उन्हें अभीष्ट थी। हिन्दी के लेखकों, प्रकाशकों और राजनीतिक क्षेत्र के अग्रणी नेताओं के साथ उनके सम्बन्ध प्रगाढ़ होने लगे। सन् 1915 ई. में ही वे राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन के सम्पर्क में आये। इलाहाबाद में चौक के घंटाघर के पास वे अपने मित्र के साथ उनसे पहली बार मिले थे। तब टंडन जी नाभा राज्य के दीवान थे। बाद में वे यह पद त्यागकर इलाहाबाद में वकालत करने के लिए स्थायी रूप से रहने लगे थे। जानसनगंज में उनकी बड़ी हवेली थी। सन् 1917 ई. में त्रिपाठी जी ने हिन्दी की पुस्तकों के प्रकाशन व विक्रय के लिए टंडन जी के सहयोग से 'साहित्य भवन' खोला जो उन्हीं की हवेली के निचले हिस्से में चलता था। यह अपने ढंग की ऐसी दूकान थी जहाँ त्रिपाठी जी की स्वयं की प्रकाशित और अन्य प्रकाशकों की समस्त हिन्दी पुस्तकें उपलब्ध हो जाती थीं। इलाहाबाद की यह काफ़ी प्रसिद्ध दूकान थी, जो खूब चली। कविता-कौमुदी भाग-एक (1917 ई.) का प्रकाशन यहीं से हुआ था।

इलाहाबाद राजनीतिक गतिविधियों का गढ़ था। और वह समय था स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए युवा-समाज में उभरनेवाले असंतोष और आक्रोश का। महात्मा गाँधी तेजस्वी सूर्य के सदृश भारत के राजनीतिक क्षितिज पर उभर आये थे। पराधीनता का पाप लोगों को मन ही मन साल रहा था। गाँव के दिनों से ही त्रिपाठी जी के मन में अपने देश के प्रति स्वाभाविक प्रेम अंगड़ाई ले चुका था। भारत के राजनीतिक वातावरण के प्रति उनमें उत्सुकता जाग गयी थी। अपनी अधूरी आत्मकथा में स्वयं त्रिपाठी जी ने लिखा है : "उन दिनों रूस और जापान की लड़ाई भी छिड़ी हुई थी। मेरे एक पड़ोसी महाजन के पास 'बंगवासी' आया करता था।···स्वतन्त्र जापान की जीत का समाचार पढ़कर हम सब प्रसन्न हो जाते थे। जापान किस तरह स्वतंत्र हुआ और स्वतन्त्र होकर उसने किस प्रकार उन्नति की, इन विषयों पर भी 'बंगवासी' में लेख निकला करते थे। मैं थोड़ा-बहुत उन्हें भी पढ़ लेता था, इससे अपने देश की स्वतन्त्रता भी प्यारी लगने लगी थी। वर्ष में एक बार जौनपुर जाकर स्वतंत्रता की चर्चा भी भवनों में सुन आता था। अतएव दिमाग का झुकाव आप ही आप देश की ओर होता रहा।" 'बंगवासी' की तरह ही नागपुर से निकलनेवाले 'हिंदी केसरी' (साप्ताहिक) में प्रकाशित लेखों से भी त्रिपाठी जी में स्वदेश-मुक्ति की कामना बलवती हुई। इस पत्र में बाल गंगाधर तिलक के मराठी 'केसरी' के ओजस्वी लेखों का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत होता था। उन दिनों इस प्रकार के लेख पढ़ना भी अपराध माना जाता था। त्रिपाठी ने ऐसे लेख मुसाले में बैठकर बाँचे थे। 'बंगवासी' और 'हिन्दी केसरी' ने उनमें आज़ादी की जो चिनगी लगा दी थी, इलाहाबाद में अनुकूल वातावरण पाकर वही लपट बन जाने के लिए व्यग्र हो उठी।

टंडन जी की प्रेरणा से त्रिपाठी जी राजनीति के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। 1917 ई. में इलाहाबाद में श्रीमती एनीबीसेंट द्वारा संस्थापित होमरूल लीग की शाखा खुली। उस समय जो तेरह सदस्य बने, उसमें त्रिपाठी जी भी एक थे। होम रूल लीग के सदस्य बन जाने से उनका संपर्क पं० मोती लाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू, पं. इन्द्र नारायण द्विवेदी, कमालुद्दीन जाफरी जैसे प्रसिद्ध नेताओं और विचारकों से हुआ। 1918 ई. में उन्होंने 'क्या होमरूल लोगे' शीर्षक कविता-पुस्तक प्रकाशित की। परन्तु अंग्रेजों के विरोध की रचना होने के कारण इसकी सारी प्रतियाँ तत्कालीन शासन द्वारा जब्त कर ली गयी।

कांग्रेस में दो दल उभर आये थे—गरम दल और नरम दल। आज़ादी के लिए दोनों में तड़प थी, आग थी। परन्तु पहले दल के लोग जहाँ बलिदान और अंग्रेजी साम्राज्य को भस्मीभूत करने को उद्वेलित थे, वहाँ दूसरे दल के लोग त्याग और फिरंगियों के समर्पण के इच्छुक थे। गाँधी जी दूसरे दल के अगुवा थे। राजर्षि टंडन जी की कृपा से युवा रामनरेश गाँधीजी के संपर्क में आये। यह सुखद संयोग

ही था कि हिन्दी के लेखक का परिचय राष्ट्रपिता से हिन्दी के मंच पर ही हुआ। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन (1917 ई.) इन्दौर में सम्पन्न हुआ था। महात्मा गाँधी सभापति थे। त्रिपाठी जी मुख्य वक्ताओं में से थे। जब वे बोलने के लिए उठे तो गाँधीजी ने पूछा—कितना समय लेंगे? त्रिपाठी जी बोले—कम से कम डेढ़ घंटा। गाँधी जी ने कहा—पैंतालीस मिनट। यह देश के सर्वोच्च नेता का आदेश था और हिन्दी के प्रतिष्ठित वाग्मी की परीक्षा का समय था। दो-तीन घंटों तक किसी भी विषय पर धाराप्रवाह बोलना त्रिपाठी जी के लिए साधारण बात थी। आज उन्हें केवल पौन घंटे बोलना था। त्रिपाठी जी बोले, उन्हें लगा कि सरस्वती उनके कंठ में विराज गयी हैं। श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करके ठीक तैंतालिस मिनट पर अपने भाषण को समाप्त करते हुए उन्होंने घोषणा की—"दो मिनट मैं महात्मा गाँधी को भेंट करता हूँ।" गाँधीजी आश्चर्यचकित और पुलकित थे। अपने भाषण में उन्होंने त्रिपाठी जी की वक्तृता की प्रशंसा करते हुए कहा—"आज यह दो मिनटों का दान, जो मुझे मिला है, यह सब दानों से श्रेष्ठ है। इस देश में मुझे मिनटों का दान किसी ने नहीं दिया था।" समय के मूल्य को जानने वाले गाँधी जी को समय का दान देकर कवि त्रिपाठी जी ने अपने साहस, आत्म-विश्वास, वाक्कौशल और स्वनियंत्रण का परिचय दे दिया था। लगभग ऐसे ही साहस और आत्म-विश्वास का परिचय गाँधी जी को दक्षिण में भी मिला था। मार्च 1919 ई. में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के निवास-स्थान पर तमिल के राष्ट्रीय कवि सुब्रह्मण्य भारती पहली बार गाँधीजी से मिले थे और उनके सत्याग्रह की सफलता के लिए आशीर्वाद देकर लौट गये थे। उस घटना ने भी गाँधीजी को विस्मित कर दिया था। हिन्दी के कवि ने समय का अभूतपूर्व 'दान' दिया तो तमिल के कवि ने 'आशीर्वाद' का दान। गाँधीजी द्वारा प्रवर्तित आंदोलन को दोनों कवियों का यह विनम्र समर्थन था।

अस्तु, त्रिपाठीजी महात्मा गाँधी के प्रिय पात्र बन गये। गाँधी जी स्वतन्त्रता के लिए चल रहे संघर्ष के नेतृत्व का मूर्त्त रूप थे। त्रिपाठी जी ने उन्हें अपना चरितनायक बनाया। गाँधी जी ने भी हिन्दी के इस तेजस्वी देशभक्त पुत्र को उठाया। दूसरे ही वर्ष 1918 ई. के बम्बई अधिवेशन में त्रिपाठी जी को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रचार मन्त्री बनाने का श्रेय गाँधी जी को ही है। गाँधी जी उन दिनों सम्मेलन के सभापति थे। देश की स्वतन्त्रता के लिए आसेतु हिमाचल भारत के जन-जन को एकता के सूत्र में पिरोना आवश्यक था और इसके लिए उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचारित करने का बीड़ा उठा लिया था। दक्षिण के विशाल भू-भाग की जनता को उत्तर की जनता से जोड़ने के लिए हिन्दी का प्रचार परमावश्यक हो गया था। और हिन्दी साहित्य सम्मेलन को यह भूमिका निभानी थी। गाँधी जी ने दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार का काम

त्रिपाठीजी को सुपुर्द कर दिया। त्रिपाठी जी के आरम्भिक मार्गदर्शन और कार्य-संचालन से दक्षिण में हिन्दी-प्रचार का पौधा विकसित होने लगा।

गाँधीजी के सम्पर्क में आने के बाद त्रिपाठी जी का दायित्व और बढ़ गया। वे साहित्यकार थे। उन्होंने लेखनी की सहायता से गाँधी जी के सिद्धान्तों का प्रचार करने का निश्चय कर लिया। 1920 ई. में उन्होंने 'गाँधी जी कौन हैं ?' नामक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उनकी जीवनी के अतिरिक्त सत्याग्रह और असहयोग पर विशद चर्चा की गयी थी। इस पुस्तक की पाँच हज़ार प्रतियों का पहला संस्करण देखते ही देखते वितरित हो गया। पाँच हज़ार प्रतियों का दूसरा संस्करण भी लेखक को उसी वर्ष निकालना पड़ा। इस पुस्तक में त्रिपाठी जी का प्रसिद्ध सत्याग्रह-गीत है, जिसमें उन्होंने स्वतन्त्रता के लिए जूझ रहे भारतीय जीवट को इन शब्दों में रूपायित किया है :

सत्य कहने से न रुकती जीभ है
काँपते क्यों हो ? इसे ही काट लो।
मैं कलम हूँ, एक मेरी जीभ से
क्या करोगे जब बढ़ेंगी सैकड़ों॥

गाँधीजी महापुरुष थे, विश्व मानव थे। उनका जीवन किसी देश विशेष के लिए नहीं, समस्त संसार के लिए था। ऐसे महामानव को चरित-नायक बनाकर 1920 ई. में त्रिपाठी जी ने अपना सर्वप्रसिद्ध खण्ड काव्य 'पथिक' लिखा। किसानों पर होनेवाले अत्याचारों के विरोध में तथा उनमें राजनीतिक चेतना विकसित करने के उद्देश्य से 1921 ई. में उन्होंने 'देश का दुखी अंग' प्रकाशित किया। उनमें भारत की ग्रामीण जनता का आह्वान करते हुए उन्होंने लिखा—"सत्याग्रह और असहयोग के प्रचारक महात्मा गाँधी ने सारे हिन्दुस्तान को असहयोग का मन्त्र फूँककर जीवित किया है। सारे हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियों की एक बड़ी सभा कांग्रेस है। उसने प्रतिज्ञा की है कि इस सरकार से असहयोग करके दिसम्बर 1921 ई. के भीतर हिन्दुस्तान में स्वराज्य स्थापित किया जायेगा। उसकी प्रतिज्ञा सारे देश की प्रतिज्ञा है।...हमें अब स्वराज्य के लिए भरपूर उद्योग करना चाहिए, चाहे जेल जाना पड़े, मार खानी पड़े, फाँसी चढ़ना पड़े, लेकिन हमें अपनी प्रतिज्ञा निभानी पड़ेगी।" त्रिपाठी जी की कथनी और करनी में अन्तर नहीं था। उन्होंने भी आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। अपने उत्कट देश-प्रेम और साहित्यिक सेवा के कारण वे नेताओं के घनिष्ठ मित्र बन गये थे। आज़ादी के लिए उन्होंने राजनीतिक मंचों से जनता का आह्वान किया, अपनी रचनाओं से युवकों में संगठन और सर्वस्व-समर्पण के भाव भरे तथा स्वय सत्याग्रही बनकर साहित्यिक समुदाय का प्रतिनिधित्व किया। सेठ गोविन्ददास जी ने उनके सम्बन्ध में ठीक ही लिखा कि 'वे ऐसे व्यक्ति नही थे कि जब मातृभूमि की

स्वतन्त्रता का आन्दोलन चल रहा हो, उस समय वे कलम-कुल्हाड़ा लेकर घर बैठे रहें और न ऐसे राजनैतिक कार्यकर्त्ता थे कि जो केवल एक स्वयं-सेवक रहते, उनमें साहित्य और राजनीति दोनों का समन्वय था।' वे प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य भी चुने गये थे। तिलक स्वराज्य फ़ण्ड के लिए उन्होंने घूम-घूमकर चन्दा जमा किया था। सत्याग्रह-आन्दोलन के प्रथम चरण में 1921 ई. में इलाहाबाद के पचपन प्रसिद्ध नेताओं को कैद किया गया था। त्रिपाठी जी उनमें से एक थे। पं. मोतीलाल नेहरू, बाबू पुरुषोदास टण्डन, पं. जवाहरलाल नेहरू, रफ़ी अहमद किदवई प्रभृति शीर्षस्थ नेताओं के साथ उन्हें भी सौ रुपये के जुर्माने और डेढ़ वर्ष के कारावास की सजा हुई। उन्हें आगरा और लखनऊ की जेलों में रखा गया। 'देश का दुखी अंग' (1921 ई.) के प्रकाशन के समय त्रिपाठी जी जेल में ही थे। जेल में वे महात्मा गाँधी के निजी सचिव महादेव भाई देसाई के साथ एक ही कक्ष में रहे थे। आगरा जेल में पं. कृष्णकांत मालवीय, गोविन्द मालवीय, महावीर प्रसाद त्यागी, बाबू गणपति सहाय के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध झण्डा-गीत के रचनाकार श्यामलाल गुप्त पार्षद भी थे। प्रत्येक रविवार को त्रिपाठी जी जेल में ही कवि-गोष्ठी का आयोजन किया करते थे। वहीं उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता 'अन्वेषण' की रचना की।

जेल से लौटने के बाद त्रिपाठी जी ने अपना पूरा ध्यान साहित्य-सेवा में लगाया। साहित्य-जगत् में उनका हिन्दी-मन्दिर प्रतिष्ठित हो चुका था। 'मिलन' और 'पथिक' ने उन्हें राष्ट्रीय कवि के रूप में स्थापित कर दिया था। 1917 ई. में कविता-कौमुदी को अनेक खण्डों में निकालने की उन्होंने योजना बनायी थी। दो खण्ड प्रकाशित भी हो चुके थे। उर्दू कवियों का परिचयात्मक खण्ड उन्होंने 1925 ई. में प्रकाशित किया। सन् 1925 ई. से वे ग्राम-गीतों के संग्रह में जुट गये। इस महत्कार्य के लिए उन्होंने तीन बार सम्पूर्ण भारत की यात्राएँ की और लगभग पन्द्रह हजार ग्राम-गीतों का अपूर्व संग्रह कर 1929 ई. में उन्हें प्रकाशित किया। इस विलक्षण ग्रन्थ की बिक्री का शुभारम्भ स्वयं राष्ट्र-पिता के कर-कमलों से हुआ था। त्रिपाठी जी के ज्येष्ठ पुत्र कविवर आनन्द कुमार त्रिपाठी ने 'कविता-कौमुदी' (ग्रामगीत) के तीसरे संस्करण (1984 ई.) में उस ऐतिहासिक घड़ी का सुखद वर्णन करते हुए लिखा है…"सन् 1929 के आरम्भ में जब वे इलाहाबाद पधारे तो मेरे पूज्य पिताजी ने नव प्रकाशित 'ग्राम गीत' की पचास प्रतियाँ मेरे हाथ श्री महादेव देसाई के नाम एक पत्र के साथ उनके पास भिजवायी थीं। उस दिन पुरुषोत्तमदास टण्डन पार्क में एक विराट सभा थी, जिसमें देश के प्रायः सभी चोटी के नेता उपस्थित थे। सभा के अन्त में गाँधी जी ने यह घोषणा की कि भाई रामनरेश जी ने मुझे पचास प्रतियाँ दी हैं, मैं इन्हें हरिजनों के लिए चन्दे के रूप में स्वीकार करके बेचना चाहता हूँ।…इस पुस्तक

का मूल्य तीन रुपया है। जो लोग मेरे हस्ताक्षर के साथ इस पुस्तक को लेना चाहें, उन्हें इसके अलावा पाँच रुपये अलग से देने पड़ेंगे। एक नवयुवक जो इस पुस्तक को ख़रीदने के लिए तेजी से आगे बढ़ा था, शायद उस समय पैसे कम होने के कारण क्षण भर के लिए हिचकिचाया। उसी समय स्व. श्री मोतीलाल नेहरू ने एक मीठी चुटकी ली और कहा—'उठता बाजार है, महात्मा जी कहाँ अड़ गये; अधिक मोल-भाव न कीजिए। कीमत कुछ घटा दीजिए न?' गाँधी जी ने मुस्कुराते हुए अपने हस्ताक्षर की कीमत 5 रु. के स्थान पर 3 रु. कर दी। देखते-देखते लोगों ने सारी प्रतियाँ दूने दाम में ख़रीद लीं। मेरे पिताजी अस्वस्थ होते हुए भी गाँधीजी के पास मंच पर उपस्थित थे।" सन् 1925 ई. से 1935 ई. तक त्रिपाठी जी ने गाँव-गाँव घूमकर ग्राम-गीतों, कहावतों और मुहावरों का संधान किया। जौनपुर के तत्कालीन जिलाधीश ए. जी. शेरिफ ने त्रिपाठी जी द्वारा संगृहीत कुछ ग्राम-गीतों का अंग्रेजी में 'हिन्दी फोक सोंग्स' के नाम से रूपांतरण भी प्रकाशित किया। सन् 1930 ई. में त्रिपाठीजी ने स्वयं का प्रेस भी खोल दिया।

त्रिपाठी जी का कर्म-क्षेत्र प्रयाग अवश्य था, परन्तु अपने गाँव के साथ उनका सम्बन्ध अटूट रहा। पहले कोइरीपुर और बाद में सुलतानपुर, जहाँ उन्होंने अपना स्थायी निवास बनवाया था, वे बराबर आया-जाया करते थे। दियरा राजवंश से उनके काफ़ी अच्छे सम्बन्ध थे। सुलतानपुर और जयसिंहपुर की भूमि उन्हें राज-माता से प्राप्त हुई थी। सुलतानपुर में अपने आवास के चारों ओर उन्होंने बहुत बड़ा उद्यान लगा रखा था। त्रिपाठी जी को साहित्य-सेवी से बढ़कर एक किसान और बागवान के रूप में जीना अभीष्ट था। खेती तो वे बचपन में स्वयं कर चुके थे। वे जीवन-भर अपने को एक किसान ही मानते रहे। उन्होंने कभी किसी को अपना परिचय विद्वान् के रूप में नहीं दिया। स्वयं को कोइरीपुर का किसान कहने में वे गर्व का अनुभव करते थे। वे किसानों के परम शुभैषी और हित-साधक नेता थे। यही कारण है कि राजघराने से घनिष्ठता होने के बावजूद वे सामंतवाद का विरोध करते रहे। पथिक (काव्य), जयंत (नाटक), पैसा-परमेश्वर (नाटक) आदि रचनाओं में शोषितों के प्रति उनकी सहानुभूति और पूंजीपतियों के प्रति विद्रोही प्रवृत्ति मुखर हुई है। कृषकों के हित के लिए उन्होंने क़ानूनी लड़ाइयाँ तक लड़ी और उन्होंने उनका प्राप्तव्य दिलवाया। किसान-आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। वे दुबारा जेल भी गये। बाद में गाँधीजी के परामर्श और आदेश से वे पूर्णतया साहित्य-सेवा में जुट गये।

1924 ई. में हिन्दी-मन्दिर से उन्होंने "कवि-कौमुदी" नामक पत्रिका भी निकाली। यह साहित्यिक पत्रिका थी और इसे काफ़ी प्रसिद्धि भी मिली। परन्तु यह अधिक नहीं चल पायी। 'बानर' (1929 ई.) और बाद में 'उद्योग' पत्रिकाएँ

भी थोड़े-थोड़े समय के लिए त्रिपाठी जी ने निकाली थीं। बाल-साहित्य के तो वे अप्रतिम रचनाकार थे। बच्चों के लिए कविताएँ, कहानियाँ, जीवनियाँ, चित्र-कथाएँ, नाटक, लेख, शिक्षाप्रद रीडरें, उन्होंने स्वयं तैयार कीं और प्रकाशित कीं। 1917 से 1935 ई. के बीच बाल-कथा कहानी के उन्होंने बारह भाग निकाले। चौथे दशक के आरम्भ में वे गाँधी जी के हिन्दुस्तानी-आंदोलन से जुड़े थे। देव-नागरी और अन्य भारतीय लिपियों के माध्यम से हिन्दुस्तानी के प्रचार के वे समर्थक थे। 1932 ई. में उन्होंने हिन्दी-हिन्दुस्तानी नामक भाषा-सम्बन्धी पुस्तक लिखी जो दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (मद्रास) द्वारा प्रकाशित हुई। 1933 में उनका हिन्दुस्तानी-कोश प्रकाश में आ गया। अपनी यात्रा के दौरान उन्होंने समय का भरपूर सदुपयोग किया। जब कभी वे यात्रा पर निकलते, अपने साथ मानस की चौपाइयाँ एवं दोहे कागजों पर लिखकर ले जाते और मार्ग में ही उनकी व्याख्याएँ लिखते जाते। एक ओर ग्राम-गीतों का संग्रह करते चलते तो दूसरी ओर मानस के पदों का विश्लेषण। इस प्रकार रामचरित मानस की टीका (1935 ई. में) तैयार हुई।

त्रिपाठीजी सिद्धहस्त साहित्यकार तो थे ही, प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता के रूप में भी उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई थी। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचारित करने के सदुद्देश्य से उन्होंने प्रारम्भिक स्तर से लेकर शोध स्तर तक की कृतियाँ पाठक-समुदाय को दीं। त्रिपाठीजी जैसे प्रतिभावान्, मेधावी और पारंगत विद्वान का ही यह सामर्थ्य था कि वे 'सच्चा गुर यह जानो तुम, बात हमारी मानो तुम; जबअपना मुँह खोलो तुम, मीठी बोली बोलो तुम' (मोतीचूर के लड्डू-1938 ई.) जैसे नन्हें-मुन्नों के पद्य और 'तुलसीदास और उनकी कविता' (1937 ई.) जैसे उच्च कोटि के आलोचना-ग्रन्थ का प्रणयन एक साथ समान अधिकार के साथ कर सके। उनकी सरल कविताओं को जितने प्यार से बच्चों ने गाया-गुनगुनाया, उतने ही आदर और श्रद्धा के साथ उनके पांडित्यपूर्ण-ग्रन्थों को विद्वानों ने सराहा-स्वीकारा। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाँधी, महा-महोपाध्याय गंगानाथ झा, महामना मदनमोहन मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, पं. जवाहरलाल नेहरू, पं. श्रीधर पाठक, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, कविवर मैथिलीशरण गुप्त प्रभृति मूर्धन्य विद्वानों और नेताओं ने उनके प्रकाशनों की मुक्त कंठ से प्रशंसा-अनुशंसा की थी। उनके प्रकाशनों की बिक्री का क्षेत्र सारा भारत था। प्रकाशक के रूप में उनकी सफलता का रहस्य था पुस्तकों का सस्ती होना। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को उन्होंने एक पत्र में लिखा था—'महँगी पुस्तकों की अपेक्षा सस्ती पुस्तक प्रकाशक को अधिक पैसा कमाकर देती है। यह रहस्य सब प्रकाशक नहीं समझते।' काश, आधुनिक प्रकाशक आज से कोई पचास वर्ष पूर्व घोषित उनके इस प्रकाशन-दर्शन को समझ पाते।

पचास वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते त्रिपाठी जी मानसिक और शारीरिक दोनों स्तरों पर थकान अनुभव करने लगे थे। एक ओर व्यापार के विस्तार की परेशानी थी तो दूसरी ओर परिवार के सांपत्तिक विवादों की। यों भी अपनी मान्यता के अनुसार अब उन्हें सारे झंझटों से मुक्त हो जाने की आवश्यकता की अनुभूति होने लगी।

लेखन और प्रकाशन से थककर त्रिपाठी जी ने 1941 ई. में अपना प्रेस बेच दिया और वे सुलतानपुर चले गये। सुलतानपुर में भी उनका लेखन चलता रहा और कुछ कृतियाँ उन्होंने हिन्दी-जगत को दीं जिनमें 'तीस दिन मालवीय जी के साथ' (1942 ई.) अत्यधिक महत्त्वपूर्ण थी। इस चर्चित पुस्तक की रचना उन्होंने सेठ बिड़लाजी के आग्रह पर की थी। सुलतानपुर में उनके दो प्रमुख कार्य थे। पहला, रेलवे स्टेशन से लगे अपने पाँच एकड़ के विशाल उद्यान की देखभाल करना और दूसरा, पुस्तकों का अध्ययन करना। अपने सुहृद पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को उन्होंने पत्र में लिखा—'कल का साहित्यिक जगत् आज स्वप्न-सा लगने लगा है। अब अन्य विद्वानों का लिखा हुआ पढ़ूँगा और देने के बजाय स्वयं अपने लिए कुछ लूंगा।···कविता में पल्लवित, पुष्पित और सुरभित वृक्षों की जो मैं कल्पना किया करता था, अब वे वृक्ष मेरे सहजीवी हैं, मैं उनकी सेवा करता हूँ और उनसे सुख ले-लेकर अपने दैनिक जीवन में चुपड़ लिया करता हूँ।' त्रिपाठी जी ने सुलतानपुर में जो उद्यान लगाया, वह अपने ढंग का अनूठा था। उसमें सभी प्रकार के फलों के पेड़ लगे थे। त्रिपाठी जी, जो बचपन से ही प्रकृति के प्रेमी थे, अब प्रकृति के शांत उन्मुक्त वातावरण में अपने को अधिक सुखी अनुभव करने लगे थे।

सन् 1946 ई. में कुछ समय के लिए त्रिपाठी जी पक्षाघात से पीड़ित रहे। बाद में सुधार अवश्य हुआ परन्तु साहित्य-साधना की अपेक्षित शक्ति नहीं रही। सन् 1950 ई. के बाद तो साहित्य-जगत से ही नहीं, सामाजिक गतिविधियों से भी वे विमुख हो गये। 1955 ई. में उन्होंने सुलतानपुर भी छोड़ दिया और वे अपने गाँव कोइरीपुर में ही रहने लगे। अब वे शरीर से काफ़ी जर्जर हो चुके थे। चारपाई पकड़ चुके थे। जीवन के उतार-चढ़ाव, आशा-निराशा, प्रेम-घृणा के अनेक दृश्यों ने उनकी स्मृति में तैरना शुरू कर दिया था। 1958 ई. में हिन्दी साहित्य सम्मेलन को प्रांतीय सरकार के शिक्षा-विभाग के लिए प्रौढ़ शिक्षा की कुछ रीडरें तैयार करनी थीं। जब सम्मेलन के अधिकारियों ने त्रिपाठी जी से 'हमारे पूर्वज' शीर्षक एक कविता लिखकर भेजने का अनुरोध किया तो उन्होंने एक अत्यन्त मार्मिक कविता पं. ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' को पत्र-रूप में लिखकर भेज दी। उसमें अपनी मनोव्यथा व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा—"जग देखा, पहचान लिये, सब अपने और पराये। मित्रों का उपकृत हूँ जिनसे स्नेह निछावरि पाये।

प्रिय निर्मल जी। पितरों पर अब कविता कौन बनाये ? मैं तो स्वयं पितर बनने को बैठा हूँ मुँह बाये। अब तो चलने के दिन आये।' कदाचित् इस अन्तिम रचना के साथ त्रिपाठी जी अब जीवन की सच्चाई के अत्यधिक निकट पहुँच चुके थे।

हिन्दी का प्रेम अस्वस्थावस्था में भी उन्हें 1960 ई. में दिल्ली खींच ले गया, जहाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन था। उनके जीवन का अंतिम समारोह था प्रयाग में सरस्वती का हीरक जयंती महोत्सव। 12 जनवरी 1962 ई. को वे अस्वस्थ होते हुए भी मुख्य समारोह में सम्मिलित हुए और उन्होंने हिन्दी-जगत के सम्मान को प्रेमपूर्वक स्वीकार किया। दूसरे ही दिन उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। उन्हें दिल का दौरा पड़ा। उनका उपचार किया गया। पर खुली हवा में रखे दीपक की लौ की तरह उनके प्राण असहाय थे। कभी स्थिति में सुधार दीख पड़ता तो कभी दुखद गम्भीरता छा जाती और अन्ततः 16 जनवरी 1962 ई. को प्रातः साढ़े छह बजे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रांगण में स्थित सत्यनारायण कुटीर में उन्होंने अपने भौतिक शरीर को त्याग दिया। जीवन भर भाषा और साहित्य की सेवा करने वाले हिन्दी-मन्दिर के पुजारी ने हिन्दी के तीर्थ 'सम्मेलन' की ही गोद में आँखें मूँद लीं। ऐसा संयोग केवल सौभाग्यशाली सारस्वत आत्माओं को ही मिल सकता है। हिन्दी जगत् ने अश्रुपूरित नेत्रों से अपने प्रिय साहित्यकार को विदाई दी।

वस्तुतः यह एक ऐसे समर्पित रचनाकार की कहानी है, जिन्होंने लगभग पैंतीस बरसों तक भाषा और साहित्य की अविराम साधना की थी। त्रिपाठी जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। वे राष्ट्रीय भावधारा के कवि थे, यथार्थ-ग्राही कथाकार थे, सामाजिक चेतना के संदेशवाहक नाटककार थे। बाल साहित्य के तो वे आदि आचार्य ही माने जाते हैं। हिन्दी में ग्राम-गीतों का संग्रह उनके सारस्वत अध्यवसाय का जीवन्त प्रमाण है। प्राइमरी से लेकर शब्दकोशों तक के निर्माण में उन्होंने अपनी असाधारण दक्षता का परिचय दिया था। अपनी शताधिक कृतियों से उन्होंने भारती की पुष्कल अर्चना की। साहित्य की कोई ऐसी विधा नहीं, जिसमें उन्होंनें सर्जन न किया हो। वे सचमुच द्विवेदीयुगीन साहित्यिक समुदाय की अग्रिम पंक्ति को सुशोभित-गौरवान्वित करने वाले मनीषी साहित्य-निर्माता थे।

त्रिपाठी जी के व्यक्तित्व के निर्माण में उनको समय-समय पर मिलनेवाली परिस्थितियों की चुनौतियों का भी महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। किशोरावस्था में परिवार का आर्थिक संकट उन्होंने झेला था। बड़े होने पर जीविका की समस्या से ग्रस्त होकर उन्हें भटकना पड़ा। पिता के स्वर्गवास के उपरांत गृहस्थी की गाड़ी खींचने की ज़िम्मेदारी उनके कंधों पर आ पड़ी थी। पारिवारिक तनावों और सांपत्तिक विवादों से भी उन्हें उलझना पड़ा था। पर वे एक योद्धा पिता के

पुत्र थे। विपत्तियों और चुनौतियों का सामना उन्होंने बड़े धैर्य और जीवट के साथ किया। साहित्य-जगत में भी उन्हें अपने को स्थापित करने के लिए जूझना पड़ा। वे आजीवन अपनी मान्यताओं पर अडिग रहे। इससे कई बार उन्हें तत्कालीन साहित्यिक धुरंधरों की नाराज़गी भी झेलनी पड़ी थी। उन्होंने अपनी लगन, मेहनत और प्रतिभा के ही बल पर सफलता प्राप्त की और पूरे अधिकार के साथ वे लगभग साढ़े तीन दशकों तक सर्जना-लोक में छाये रहे। आठवीं कक्षा तक ही उन्होंने औपचारिक शिक्षा ली थी, परन्तु स्वाध्यायशील होने के कारण हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी, उर्दू, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओं के भी जानकार हो गये। ग्राम-गीतों का संग्रह करने की ठानी, तो तन-मन-धन से जुट गये। दस बरसों की कष्टप्रद साधना में उन्होंने दस हज़ार से भी अधिक रुपये खर्च किये होंगे। गाँव-गाँव घूमते रहने और अत्यधिक गुड़ का सेवन करते रहने से उन्हें मधुमेह से ग्रस्त होना पड़ा था। परन्तु उनकी एकलव्यी साधना पर इन प्रतिकूलताओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और अन्ततः सारे अवरोधों को ध्वस्त करते हुए वे अपने गंतव्य पर पहुँचने में सफल हुए। वस्तुतः उनका व्यक्तित्व प्रेरणा का प्रकाश-पुंज है।

उनका बाहरी व्यक्तित्व भी कम आकर्षक नहीं था। सुन्दर सुगठित शरीर, लालिमा बिखेरता गौर वर्ण, तेजस्वी मुखमण्डल, प्रशस्त ललाट, नोकदार नासिका, चौड़ा और सुदृढ़ वक्षस्थल, शरीर पर शुभ्र खादी के वस्त्र और मस्तक पर सफेद टोपी; गरिमा का साकार रूप थे त्रिपाठी जी! उनकी भव्य छवि की अनूठी ही प्रदीप्ति थी। उनकी दिनचर्या भी पर्याप्त नियमबद्ध हुआ करती थी। प्रातःकाल चार बजे उठकर मानस पाठ करने का जो क्रम बचपन मे बना, वह जीवन भर चलता रहा। शुद्ध सात्विक आहार ही उन्हें अभीष्ट था। प्रतिदिन प्रातःकाल दस बादाम का सेवन करते थे। सूखे मेवों से अतिथियों का सत्कार करना उनकी विशेषता थी। प्रमाद और आराम से उन्हें चिढ़ थी। घर में रखी आराम-कुर्सियों को उन्होंने हटवा दिया था। उन्होंने जीवन-भर खादी पहनी। घर के चर्खे पर स्वयं सूत काता करते थे। तैरने का शौक़ रखते थे। छोटी-मोटी नदियों को तैर कर पार करना उन्हें अच्छा लगता था। भ्रमण का उन्हें बड़ा चाव था। उनका अधिकांश समय यात्राओं में ही बीता करता था। वे अपने पास पोस्टकार्ड अवश्य रखा करते थे और जहाँ भी जाते, पत्र द्वारा अपने परिवार और इष्ट मित्रों को उसकी बराबर सूचना दे दिया करते थे। वे एक भ्रमणशील लेखक के रूप में हिन्दी-जगत में विख्यात हो गये।

पं. रामनरेश त्रिपाठी एक प्रेरक साहित्यकार थे। आज हिन्दी में ऐसे अनेक स्थापित कवि और लेखक हैं, जिनको उन्होंने लेखन की ओर प्रेरित-प्रवृत्त किया था। जब वे जेल में थे तो श्यामलाल गुप्त पार्षद जी की देशभक्तिपूर्ण रचनाओं

की बड़ी प्रशंसा करते, उनका उत्साह बढ़ाया करते थे। स्वयं पार्षद जी ने अपने एक संस्मरण में लिखा—'त्रिपाठी जी के सामने मैं एक नवयुवक था, वे मेरे लिए परम श्रद्धास्पद गुरु के समान थे। कवि-सम्मेलनों में मेरी कविता पर बहुत उत्साह प्रकट करते थे।' कालाकांकर के कुँवर सुरेशसिंह को हिन्दी लिखने की प्रेरणा त्रिपाठी जी ने ही दी। उन्हें 'बानर' पत्रिका का सम्पादन-कार्य दिया। वियोगी हरि जी को बाङ्ला की 'शुकदेव' नामक सुन्दर रचना का हिन्दी भाषांतरण करने की प्रेरणा दी जो बाद में 'साहित्योदय' में छपा था। इसे स्वयं अनुवादक ने इन शब्दों में स्वीकार किया है—"अपवाद रूप में मेरी यही छोटी-सी रचना खड़ी बोली में है। वह आज अप्राप्य है। मेरे उस अनुवाद के पीछे त्रिपाठी जी की प्रेरणा थी।" खड़ी बोली की कविता को उन्होंने सौंदर्य प्रदान किया था। राष्ट्र-कवि दिनकर भी उन्हें अपना आदर्श कवि मानते थे—"कवि के जीवन की सबसे बड़ी खोज यह होती है कि उसका सबसे अधिक प्रिय कवि कौन है अर्थात् वह किसके समान बनना चाहता है?···अनुकरण मैंने मैथिलीशरण जी, पं. रामनरेश त्रिपाठी और पंतजी का भी किया था—मेरी सबसे बड़ी भक्ति मैथिलीशरण जी और रामनरेश जी त्रिपाठी पर थी।···आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को संस्कृत से हिन्दी की ओर लाने में बहुत बड़ा श्रेय त्रिपाठी जी का है। उभरते हुए कवियों का उन्होंने सदैव मार्गदर्शन किया। मथुरा के डॉ. त्रिलोकी नाथ ब्रजबाल के गीत-संग्रह की प्रशंसा करते हुए 3 सितम्बर 1960 के पत्र में उन्होंने लिखा—"आपके गीत मैंने पढ़ लिये। अच्छे हैं। गीत लिखने की आपमें प्रखर प्रतिभा है। राजस्थान में आपको शृंगार और वीर रस के बड़े सुन्दर कथानक मिलेंगे। किसी एक को लेकर उसे अपनी कविता से पुनर्जीवित कर दीजिए, उसके साथ आपकी कविता की उम्र भी बढ़ जायगी।" अपने सुपुत्र आनन्द कुमार त्रिपाठी की प्रबन्ध काव्य-कृति 'अंगराज' को पढ़कर उसके ऊपर उन्होंने लिख दिया था—"अति सुन्दर अद्वितीय काव्य।" एक नहीं, ऐसे अनेकों दृष्टान्त मिल जायेंगे जिनसे त्रिपाठी जी के प्रेरक व्यक्तित्व की झलक मिलती है।

त्रिपाठी जी मूलतः कवि थे, सहृदय थे। दूसरों की सेवा और सहायता करने में सदैव तत्पर रहते थे। उनके सुपुत्र आनन्द कुमार त्रिपाठी के अनुसार—"पेट, जीभ और कलम घिसने से किसी का हित हो सके तो कर देना चाहिए, यही उनका सिद्धान्त था।" अपने इस सिद्धान्त पर वे आजीवन चले। इलाहाबाद में भिक्षा माँगने आनेवाली बम्हरोली की बुधनी नामक बुढ़िया की आर्थिक सहायता के लिए उन्होंने तत्कालीन केन्द्रीय कानून मन्त्री डॉक्टर कैलाशनाथ काटजू से विशेष आग्रह किया था। किसानों और ग़रीबों के हित के लिए वे बड़े-बड़े अधि-कारियों से उलझ जाया करते थे। दूसरों को किसी भी प्रकार का कष्ट न हो, इसका वे बहुत ध्यान रखते थे। जब वे काफ़ी बीमार थे तो स्वास्थ्य-लाभ के लिए

कुँवर सुरेश सिंह ने उनसे कालाकांकर आकर रहने का आग्रह किया, तब उन्होंने लिखा—"कालाकांकर मेरे लिए सबसे अनुकूल स्थान होगा। एक तो गंगा जी का तट, दूसरे आपका और श्रीमती जी का आतिथ्य। तीसरे एक ख़ास तरह के वातावरण के अभ्यासी शिष्ट पुरुषों का सत्संग; इतने प्रलोभन और कहीं नहीं मिल सकते। पर मैं स्वयं अपने एक आंतरिक प्रतिबन्ध की रक्षा कर रहा हूँ। वह यह कि इस जीर्ण-शीर्ण और निरर्थक शरीर का दुःख किसी सुखी मित्र के जीवन में न पड़ने देना।" दूसरों को कष्ट न देना और स्वयं कष्ट झेल लेना किसी असाधारण मनुष्य की ही प्रकृति हो सकती है।

साहस, सच्चाई, विनम्रता और कृतज्ञता के भाव तो उनमें कूट-कूट कर भरे थे। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में गोमती की धारा में डूबते हुए एक बालक की प्राण-रक्षा करनेवाले त्रिपाठी जी साहस की मूर्ति थे। एक बार प्रयाग में सांप्रदायिक दंगा भड़क उठा। नखासकोने से होकर स्टेशन जाते समय जब कुछ लोगों ने उनका पीछा किया तो अपने जेब के पेन को हाथ में लेकर इस तरह पकड़ा मानो वह पिस्तौल हो। यदि वे सूझबूझ और साहस न दिखाते और भागने की चेष्टा करते तो परिणाम शायद कुछ और ही होता। सच्चाई के लिए वे बड़े-बड़ों से भिड़ जाया करते थे। साहित्यकारों का यथोचित सम्मान न हो, यह उन्हें असह्य था। अप्रैल 1952 ई. के प्रथम सप्ताह में ब्रज साहित्य के मंडल के अधिवेशन में संयोज-कीय व्यवस्था की ढिलाई और हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वानों के प्रति हुए उदासीन व्यवहार से वे तिलमिला उठे थे। जिसकी झलक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे उनके 8 अप्रैल 1952 ई. के पत्र से मिलती है, जिसमें उन्होंने लिखा कि राजनीतिक नेताओं की आवभगत में हमें इतना नहीं खो जाना चाहिए कि जिससे साहित्यिक बन्धुओं के आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचे। समस्त साहित्यिक समाज के लिए उनके मन में आदर और सम्मान का भाव था। अपनी प्रतिष्ठा या मान की उन्हें अधिक चिन्ता न थी। खरी बात कहने के अभ्यस्त होने के कारण वे अनेकों के अप्रिय भी बन गये थे परन्तु उन्होंने इस बात की कभी चिन्ता नहीं की। राज-परिवार, श्रेष्ठि-समाज और अधिकारी-वर्ग से घनिष्टता के बावजूद वे शुद्ध साहित्यिक होने के कारण सामंतवादी प्रवृत्ति एवं विचारों का विरोध करते रहे। अपने क्षेत्र के तत्कालीन (1946-50) डिप्टी कलेक्टर श्री मार्कण्डेय सिंह की पत्नी की बीमारी में त्रिपाठी जी उन्हें देखने आये। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने पूछा कि कहीं आपने राजा के यहाँ का अन्न तो नहीं खाया ? डिप्टी साहब ने खाया होगा और उसी पाप से आप बीमार हैं। पति के पाप का प्रायश्चित्त तो पत्नी ही को करना होता है। इतने तीखे आलोचक थे त्रिपाठी जी। राजाओं, जमींदारों और प्रभुत्वशील सरकारी अधिकारियों को कभी-कभी उनकी यह स्पष्टवादिता और खरी आलोचना व्यावहारिकता की सीमा का अतिक्रमण भी कर जाया करती थी।

फिर भी उनके मन में कोई द्वेष या वैर-भाव नहीं था। मन में किसी प्रकार की गाँठ नहीं थी।

अपनी आत्मस्तुति से प्रसन्न होने की प्रवृत्ति से वे कोसों दूर थे। दैनिक भारत (प्रयाग 1954 ई.) में पं. गौरी शंकर गुप्त ने प्रकाशित अपने एक लेख में उन्हें आचार्य राम नरेश त्रिपाठी घोषित किया था तो उन्होंने बड़ी विनम्रतापूर्वक प्रतिवाद करते हुए उत्तर में 'शब्दों की मानरक्षा नामक निबन्ध लिखा, जिसमें अपने लिए 'आचार्य' विशेषण को अनावश्यक मानते हुए कहा—' मुझे जो बात प्रिय नहीं लगी, वह मेरे नाम के आगे आचार्य शब्द। बहुमानास्पद प्राचीन शब्दों को जहाँ कहीं चिपका देना मेरी राय में उनका अपमान करना है। आचार्य तो बहुत बड़ा शब्द है—पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी को आचार्य न कहकर इससे भी बड़ा कोई विशेषण दिया जाता तो सार्थक होता। पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी को आचार्य शब्द खूब फबता है।' यही विनम्रता थी जिसने उन्हें महान् बनाया। अपनी काव्य-रचनाओं द्वारा अपरिमित यश लूटने वाले त्रिपाठी जी ने तो अपने को कवि तक मानने से इन्कार किया था—'मैं आचार्य तो बिल्कुल नहीं हूँ और अब कवि भी नहीं हूँ। कवि तो वाल्मीकि, व्यास, कालिदास एवं तुलसीदास थे। वर्तमान समय में रवीन्द्रनाथ भी कवि थे। मेरी राय में अन्य कवि तो वृक्ष की शाखाएँ हैं। शाखाओं को वृक्ष नहीं कहा जा सकता।' यह विनय उनके चरित्र का विशिष्ट गुण था।

पंडित जी के व्यक्तित्व की एक और विशेषता थी उनमें अंतर्हित कृतज्ञता का भाव। अपने जीवन के संध्याकाल में भी वे अपने मित्रों का उपकार और स्नेह यदि किया करते थे। दूरस्थ मित्रों की मैत्री को तो वे पूर्व जन्म का पुण्यफल ही मानते थे। राजस्थान के मारवाड़ी समाज और नेवटिया-परिवार को तो वे अपना जीवनदाता ही मानते थे। सेठ रामदयालु नेवटिया के कवि-रूप को हिन्दी में प्रतिष्ठित करने का श्रेय उन्हीं को है। 'चाँद' के मारवाड़ी अंक में राजस्थानी-साहित्य की आलोचना पढ़कर उन्हें मार्मिक क्षोभ हुआ था और उक्त साहित्य के प्रति हिन्दी के साहित्यकारों के अज्ञान् को दूर करने के लिए उन्होंने 'मारवाड़ के मनोहर गीत' (1930 ई.) नामक सुन्दर पुस्तक की रचना की।

त्रिपाठी जी अत्यन्त सरल और भावुक प्राणी थे। मर्मस्पर्शी प्रसंगों में प्राय: वे भाव-विभोर और सजल हो जाया करते थे। सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री लक्ष्मी-नारायण मिश्र ने एक ऐसे ही प्रसंग का उल्लेख करते हुए लिखा है—"वह अपनी कन्या के लिए वर खोजने आजमगढ़ जिले के पूर्वी अंचल में, जिसमें एक ही पूर्वज की सन्तान हम लोग-नौ-दस गाँव में बसे हैं, गये। जो वर उन्हें पसन्द हुआ, वह इंजीनियरिंग कर चुका था, पर उसके पिता कुछ अधिक व्यवहार-कुशल और लाभ-लोभ के जीव थे। उन्होंने यह सम्बन्ध नहीं स्वीकार किया। त्रिपाठी जी रो पड़े थे।

उन दिनों में 'अंतर्जगत के बाद 'सिन्दूर की होली' तक मेरी पाँच-सात रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं। मैंने त्रिपाठी जी को समझाकर प्रकृतिस्थ करने की चेष्टा की और तब त्रिपाठी जी जैसे क्रोध में भर कर बोल उठे—"मिश्र जी, आप भी सरस्वती के पुत्र हैं, आपके सामने में संकल्प करता हूँ कि अपनी कन्या को मैं आपके कुल के इस प्राणी के घर से बड़े घर में दूँगा। लड़का छोड़कर इनके पास और क्या है कि इन्होंने मेरा इस प्रकार बुलाकर अनादर किया।' मुझे कहना पड़ा, 'मेरे कुल में एक व्यक्ति आपके प्रति अपराधी बन गया तो हम सब अपराधी हैं, पूरा कुल अपराधी है।' इस पर वे खुले मन से हँस पड़े थे और बोले, 'नहीं नहीं, आप तो इस कुल के नहीं, सरस्वती के कुल के है।' त्रिपाठी जी ने वास्तव में अपनी कन्या को बहुत बड़े घर में दिया। उनके आत्म-गौरव को जो ठेस लगी, उससे कन्या का तो लाभ ही हुआ। आँसू, क्रोध और हँसी, तीनों इतने थोड़े समय में त्रिपाठी जी ने मुझे दिखा दिया था।"

त्रिपाठी जी का व्यक्तित्व उनकी विनोदी प्रकृति से सदैव खिला रहता था। सरस स्वभाव के कारण चुटकियाँ लेने में उन्हें बहुत आनन्द आता था। ज़िंदादिली उनके स्वभाव का अंग थी। हास्य की सैकड़ों कविताएँ उन्हें कंठस्थ थीं। हास्य-विनोद से परिपूर्ण छंद लिखने में भी वे बेजोड़ थे। 1917 ई. में जब वे आरंभ में प्रयाग आये तो हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के पुराने मकान में ठहरे थे। उसकी स्थिति ठीक नहीं थी। त्रिपाठी जी ने उस मकान की झाँकी चित्रित करने के लिए 'सम्मेलनाष्टक' लिखा। जिस कमरे में वे सोते थे, उसका वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा—

> **बूँद बरसात की न जात देत बाहर है**
> **चलनी-सी छत सदा दीखत अकास है।**
> **घन रोवे एक घड़ी छत रोवे चार घड़ी**
> **खटिया का खेल रात भर काम खास है।**
> **मकड़ी के जाले बिसतुइयों के रिसाले**
> **चूहे चुहियों की कूदफाँद नित आस-पास है।**
> **दिन ही को लागै डर रात की न पूछो बात**
> **ऐसे भूत-घर में नरेश का निवास है।**

ग्राम-गीतों के संकलन के दौरान 1927 ई. के अंत में त्रिपाठी जी काशी में बाबू जयशंकर प्रसाद जी से मिले थे। उन्होंने कुछ ग्राम-गीत भिजवाने का आश्वासन दिया था। पर बहुत दिनों तक कोई पत्र नहीं मिला तो त्रिपाठी जी ने प्रसाद जी को 1928 ई. की जनवरी में यह रोचक पत्र पद्य में लिखा—

> **प्रिय प्रसाद जी, आपसे, मिले न अब तक गीत।**
> **डाक देखते थक गया, गये बहुत दिन बीत॥**

जो कुछ संग्रह हो चुका उसे दीजिए भेज।
डाक जोहते ही कहीं बीत न जाये एज॥

एक बार उन्होंने अपनी मित्रमंडली में घोषणा की कि जो सबसे 'मीठी चीज़' का नाम बतायेगा, उसे पुरस्कार दिया जायेगा। इस पर अनेक नाम बताये गये परन्तु त्रिपाठी जी ने पुरस्कृत किया उस व्यक्ति को जिसने कहा कि 'परनिंदा' से बढ़कर कोई मीठी चीज़ नहीं है। वास्तव में आज के मनुष्य की मनोवृत्ति पर यह त्रिपाठी जी का पुरस्कार नहीं, प्रहार ही था।

अन्तिम दिनों में मृत्यु-शय्या पर भी उन्होंने अद्भुत साहस, धैर्य और ज़िंदा-दिली का परिचय दिया था। देहावसान के दो दिन पूर्व अर्थात् 14 जनवरी को वे इलाहाबाद के साहित्यिक मित्रों से घिरे रहे। डॉक्टरों ने अधिक बोलने से मना कर दिया था। पर त्रिपाठी जी कब माननेवाले थे? मित्रों के साथ बतियाने और हँसने-हँसाने में वे इतने डूब गये कि उन्हें अपने रक्तचाप की भी चिंता नहीं रही। श्री रामप्रताप त्रिपाठी के टोकने पर बोल उठे—'शास्त्री जी, क्या आप चाहते हैं कि अब अन्तिम समय में मैं अपनी आदत बदल डालूँ? डाक्टर लोग तो लकीर के फ़कीर होते हैं। जो कुछ उनकी किताब में लिखा रहता है, उसी को ब्रह्म-वाक्य समझते हैं। आप डाक्टरों को बुलाकर कहिए कि वे देखें तो उन्हें ज्ञात होगा कि इस बोलने-चालने से तथा मित्रों से मिलने में मेरी तबीयत में कितना सुधार हुआ है। डाक्टर तो केवल रक्तचाप देखते हैं। किन्तु उन्हें रक्तचाप के केन्द्र हृदय की प्रसन्नता का ध्यान नहीं रहता।'

इस ज़िंदादिली के आगे सभी निरुत्तर थे।

2

साहित्य-सर्जना

पं. रामनरेश त्रिपाठी बहुमुखी प्रतिभा के समर्थ साहित्य-स्रष्टा थे। उन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा को अपनी रचनाओं से समृद्ध किया। अपने चतुर्दिक् लेखन से उन्होंने हिन्दी भाषा की सेवा की। उनके साहित्य के चार आयाम थे—मौलिक साहित्य, विवेचनात्मक साहित्य, लोक साहित्य और ज्ञान-विज्ञान का साहित्य। मौलिक साहित्य में उनके द्वारा सृजित काव्य, कहानी, उपन्यास, चरित, नाटक, व्यंग्य और बाल-वाङ्मय आते हैं; विवेचनात्मक साहित्य के अन्तर्गत साहित्येतिहास, समालोचना, टीका, संपादन, संकलन और भाषा-विषयक लेखन गिने जा सकते हैं; ग्राम-साहित्य से सम्बन्धित उनके कार्य को लोक-साहित्य में समाविष्ट किया जा सकता है तथा साहित्येतर विषयों की जानकारी देने वाली एवं अन्य भाषा से अनूदित रचनाएँ ज्ञान-विज्ञान विषयक साहित्य के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं।

उपर्युक्त विभाजन के आधार पर त्रिपाठी जी की समस्त प्रकाशित कृतियों की नामावली इस प्रकार है—

(अ) मौलिक साहित्य

क. काव्य

1. **मुक्तक** : मारवाड़ी मनोरंजन, आर्य संगीत शतक, कविता-विनोद, क्या होम रूल लोगे, मानसी।

2. **प्रबन्ध** : मिलन, पथिक, स्वप्न।

ख. कहानी

तरकस, आँखों देखी कहानियाँ।

ग. उपन्यास

वीरांगना, वीरबाला, मारवाड़ी और पिशाचिनी, सुभद्रा, लक्ष्मी ।

घ. चरित

दमयन्ती चरित, श्रीमान सेठ रामदयालु नेवटिया का जीवन चरित, पृथ्वीराज चौहान, पद्मावती, गाँधीजी कौन हैं, आल्हा रहस्य, सेठ जमनालाल बजाज, तीस दिन मालवीय जी के साथ।

ङ. नाटक

जयंत, प्रेमलोक, वफ़ाती चाचा, अजनबी, पैसा परमेश्वर, बा और बापू, कन्या का तपोवन ।

च. व्यंग्य

दिमाग़ी ऐयाशी, स्वप्नों के चित्र ।

छ. बाल-वाङ्मय

1. **पद्य :** बालक सुधार शिक्षा, मोहन माला, मोहन भोग, बानर संगीत, हंसू की हिम्मत, खोजो खोज निकालो, नेता-बुझौवल, बताओ तो जानें, मोतीचूर के लड्डू ।

2. **गद्य :** महात्मा बुद्ध, अशोक, चंद्रगुप्त, आल्हा, हरिश्चन्द्र, बाल कथा-कहानी (12 भाग), मौत के सुरंग की कहानी, आदमी की कीमत, पैखन, रूपा, भय बिन होय न प्रीति, बेल कुमारी, बुढ़िया बुढ़िया किसे खाऊँ, बताओ तो जानें, फूलरानी, पकड़ पुछकटे को, तीन सुनहले बाल, तीन मेमने डंकू, चुड़ैल रानी, चटक मटक की गाड़ी ।

3. **चित्रात्मक :** गुपचुप कहानियाँ (दो भाग), कहानी के कल-पुर्जे ।

4. **शिक्षा :** गाँधी ताश जवाहर पत्ता, हिन्दी प्राइमर (दो भाग), हिन्दी ज्ञानोदय (छह भाग), कन्या बोधिनी (पाँच भाग)।

(आ) विवेचनात्मक साहित्य

क.साहित्येतिहास

हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास, खड़ी बोली की कविता का संक्षिप्त परिचय, उर्दू ज़बान का संक्षिप्त इतिहास ।

ख. समालोचना

तुलसीदास और उनकी कविता (दो भाग), तुलसी और उनका काव्य।

ग. टीका

भूषण ग्रन्थावली, अयोध्याकांड, श्रीरामचरितमानस, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, सुदामा चरित, शिवा बावनी।

घ. संपादन

1. ग्रंथ : कविता कौमुदी (छः भाग), सूरदास की विनय पत्रिका, रहीम, चिंतामणि, सुकवि कौमुदी।

2. पत्रिका : कवि कौमुदी, वानर, उद्योग।

ङ. संकलन (सूक्ति)

नीति शिक्षावली, नीति रत्नमाला, नीति के श्लोक, नीति रत्नावली, मानस की सूक्तियाँ

च. भाषा

पद्य प्रबोध, हिन्दी पद्य रचना, हिन्दी शब्द कल्पद्रुम, हिन्दी पत्र-शिक्षक, हिन्दी हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तानी कोश, हिन्दी मुहावरे।

(इ) लोक साहित्य

मारवाड़ के मनोहर गीत, घाघ और भड्डरी, सोहर, हमारा ग्राम-साहित्य, ग्राम-साहित्य (तीन भाग)।

(ई) ज्ञान-विज्ञान विषयक साहित्य

क. संस्कृति

भारतीय कथा अर्थात् हिन्दी महाभारत, मानस के पाँच पात्र।

ख. ग्राम-जीवन

मिट्टी के सुखदायक घर और नमूने का गाँव, किसानों के काम की बातें।

ग. राजनीति

देश का दुखी अंग।

घ. यात्रावृत्त

उत्तरी ध्रुव की भयानक यात्रा।

ङ. आचरण

अंग्रेजी शिष्टाचार।

च. संगीत

अभिनव संगीत।

छ. विज्ञान

आकाश की बातें, योग के आसन।

ज. भावांतरण

इतना तो जानो, कौन जाग रहा है।

उपर्युक्त सूची से स्पष्ट होता है कि उनकी रचना सर्वतोमुखी थी। सर्वप्रथम, हम उनके मौलिक साहित्य पर विचार करें।

काव्य साहित्य

खड़ी बोली को काव्य की भाषा के रूप में सजाने-सँवारनेवाले रचनाकारों में त्रिपाठी जी का अन्यतम स्थान है। भाव और भाषा का मंजुल मणि-कांचन प्रयोग उनकी विशेषता थी। सरल और सहज खड़ी बोली को उन्होंने अपनी भावनाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। भारतेंदु के समय तक प्रचलित, ब्रजभाषा के मोह-जाल को तोड़कर उन्होंने युग की आवश्यकता के अनुरूप खड़ी बोली में काव्य रचना की। उनका विचार था कि भाषा समय के अनुसार बदलती है, और बदलनी चाहिए। खड़ी बोली चूँकि जन-जन की अभिव्यक्ति का सहज माध्यम बन चुकी थी, अतः उसमें काव्य-लेखन की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना उन्होंने उचित समझा। आरम्भ में अपने खड़ी बोली के समर्थन के कारण उन्हें कुछ साहित्यिक मित्रों का विरोध भी झेलना पड़ा। लोगों में यह भ्रांति थी कि वे ब्रजभाषा के विरोधी हैं। लेकिन वे विचलित नहीं हुए और आधुनिक काव्य-भाषा के रूप में खड़ीबोली की श्रेष्ठता का उद्घोष करते रहे। अपनी मान्यता को स्पष्ट करते हुए अपने एक पत्र (8-1-1940) में उन्होंने पं. किशोरीदास वाजपेयी को लिखा था—

> 'ब्रजभाषा की मधुरता का मैं संभवतः सबसे अधिक आसक्त साबित होऊँगा। मैंने उसे केवल असामयिक बताया है, अनावश्यक और अप्रिय नहीं।'

वे जानते थे कि पराधीन भारत को जगाने के लिए कोमल काव्य-भाषा की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है तो जन-जन को जाग्रत करनेवाली, हृदय में उत्साह का संचार करनेवाली और अंग्रेजों को कँपा देनेवाली ओजपूर्ण भाषा की। खड़ी बोली इस भूमिका के सर्वथा उपयुक्त थी।

त्रिपाठी जी ने खड़ी बोली में लिखना आरम्भ किया। उन्होंने अभिव्यक्ति के लिए अकृत्रिम सरल भाषा का सहारा लिया। बोलचाल की खड़ी बोली को उन्होंने मुख्यत्व प्रदान किया। संस्कृत के भारी भरकम शब्दों से अलंकृत भाषा उन्हें प्रिय नहीं थी। जो भाषा कवि के भाव को समझने में सहायता नहीं करती वरन् उल्टे बाधक हो जाती है, वह काव्य-लेखन के लिए उपयुक्त नहीं है। त्रिपाठी जी के काव्य-साहित्य की विशेषता उसका प्रसाद गुण-सम्पन्न होना है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन (1911) में हिन्दी-लेखन पर अपने विचार व्यक्त करते हुए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने घोषित किया था –'मैं तो सरल भाषा के लेखक ही को बहुत बड़ा लेखक समझता हूँ। लिखने का मतलब औरों पर अपने मन के भाव प्रकट करना है। जिसका मनोभाव जितने ही अधिक लोग समझ सकेंगे, उसका प्रयत्न और परिश्रम उतना ही अधिक सफल हुआ समझा जायगा।' अभिव्यक्ति की इस कसौटी पर त्रिपाठी जी खरे उतरते हैं। उनकी समस्त काव्य-रचनाएँ ऐसी प्रशस्त प्रदीपिकाएँ है जो आबाल-वृद्ध सभी पाठकों के मन को अनायास छू जाती हैं।

सन् 1903 से 1918 ई. तक का समय द्विवेदी-युग के नाम से अभिहित किया जाता है। इस अवधि में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का असाधारण व्यक्तित्व हिन्दी-जगत् पर छाया रहा। जनवरी सन् 1900 से हिन्दी की अद्वितीय पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन आरम्भ हुआ और सन् 1903 में इसका सम्पादन आचार्य द्विवेदी ने सँभाला। सरस्वती अपने ढंग की एक ऐसी पत्रिका थी जो समूचे हिन्दी जगत् की भावनाओं को मूर्तरूप प्रदान करती थी और समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों से नवोदित रचनाकारों को प्रकाश में लाती थी। द्विवेदी जी तत्कालीन लेखक-समुदाय के सर्वेसर्वा थे। उन्होंने अपने समय के कई प्रगतिशील आदर्शवादी लेखकों को प्रोत्साहन दिया और समाज की रूढ़ियों, कुप्रथाओं, भेदजनित विचारों आदि से संघर्ष करने के लिए देशभक्त कवियों का आह्वान किया था। द्विवेदी-मंडल और मंडलेतर तत्कालीन सभी रचनाकारों ने अपना एक ही लक्ष्य निश्चित कर रक्खा था और वह था लोकमंगल। समाज-सुधार और राष्ट्रोद्धार का बीज तो भारतेन्दु और उनके सहयोगी कवि बो ही चुके थे, द्विवेदी-काल में ही जनता के मनोबल का अनुकूल वातावरण पाकर फूलने-फलने लगा। पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सियाराम शरण गुप्त, नाथूराम शर्मा 'शंकर' प्रभृति कवियों ने सामाजिक नवोद्‌बोधन के साथ

राष्ट्रीयता का मंत्र भी फूंका। इस काल के रचनाकार स्वतन्त्रता-आंदोलन से सीधे जुड़े थे, अतः उनका राष्ट्रीय स्वर पर्याप्त मुखर और प्रखर था। ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि सामाजिक सुधार की संस्थाओं तथा उनके कार्यकलापों की छाप इनकी कविताओं में परिलक्षित होती है। राष्ट्रीय चेतना के अभ्युदय के इस युग में त्रिपाठी जी ने काव्य के सर्जनात्मक धरातल पर जो भूमिका निभायी वह चिर स्तुत्य रहेगी।

त्रिपाठी जी की कविता का मूल स्वर मानवतावादी है। वे काव्य में जनमंगल के उदात्त स्वर को मुखरित करनेवाले साहित्यिक थे। उनके तीन आराध्य थे—ईश्वर, मातृभूमि और मानव। अपनी कविताओं में वे एक परम श्रद्धालु, देश-भक्त, लोककवि के रूप में उभरकर आते हैं। प्रकृति की सुन्दरता से अभिभूत होकर उनके कवि ने अनेक स्थलों पर अपने उल्लास को अवश्य उँड़ेला है, परन्तु प्रकृति से भी अधिक सुन्दर मनुष्य के जीवन से जुड़कर सुरम्य गीत गाने में उनका मन अधिक रमा है। उनकी 'प्रार्थना' रचना उनके विनय और आत्म-निवेदन की भावना से ओतप्रोत है। उनके भोले-भाले युवा हृदय से उद्भूत उनकी यह प्रार्थना समस्त हिन्दी-जगत की प्रार्थना बन गयी—

हे प्रभो ! आनंददाता ज्ञान हमको दीजिए,
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।
लीजिए हमको शरण में हम सदाचारी बनें,
ब्रह्मचारी, धर्मरक्षक, वीरव्रत धारी बनें।

हिन्दी की आधुनिक विनय-रचनाओं में उपर्युक्त प्रार्थना का पुष्कल स्थान है। आज भी करोड़ों हिन्दी भाषियों की जिह्वा पर ये पंक्तियाँ चढ़ी हुई हैं। यह प्रार्थना कवि के कंठ से क्या निःसृत हुई, इसकी सुवास से सारा हिन्दी-जगत् ही खिल उठा। इस कविता में केवल ईश्वर के प्रति आत्म-निवेदन ही नहीं है, देश-भक्ति का भाव भी इसमें निहित है। देश के ज्ञान-गुण संपन्न, सदाचारी वीर नागरिक बनने की उदात्त भावना भी इसमें प्रस्फुटित हुई है। इसमें ईश्वर-भक्ति, देश-प्रेम और मानवता की मंजुल भावनाओं का संगम द्रष्टव्य है। दूसरे और तीसरे दशक तक तो यह प्रार्थना इतनी लोकप्रिय हो गयी कि देश के हरेक विद्यालय में इसका प्रचलन हो गया और बच्चे-बच्चे के कंठ से फूटने लगी। हिन्दी में 'भारत भारती' से भी अधिक लोकप्रिय रचना कोई है, तो त्रिपाठी जी का 'प्रार्थना-गीत' ही है।

त्रिपाठी जी देश-भक्त कवि थे। उनकी विनय की रचनाओं में भी राष्ट्रीयता का पुट ही रहता था। प्रार्थना-गीत की 'वीरव्रतधारी' बनने की कामना-पंक्ति उनकी देशभक्ति का परिचय देती है। 'बालक-विनय' (कविता विनोद, 1914) में भी उन्होंने प्रभु से यही प्रार्थना की है कि वे उन्हें देशभक्त बना दें ताकि वे

अपनी मातृभूमि के दुःख-दर्द को दूर कर सकें —

मन में देशभक्त बनने की उठी अटल अभिलाषा है,
सफल मनोरथ करो दयामय, हमें तुम्हारी आशा है।

ईश्वर-भक्ति और देशानुरक्ति के साथ-साथ उनकी कविताओं में मानवतावादी प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है। लोकमंगल की भावना से उनका काव्य-साहित्य परिपुष्ट है। महाकवि तुलसी विरचित 'कीरति भनिति भूति भली सोई। सुर सरि सम सब कहँ हित होई'—उनकी आदर्श पंक्तियाँ थी। त्रिपाठी जी गुरुदेव और बापू से बहुत प्रभावित थे। दोनों मनीषियों ने कला के उद्देश्य के बारे में जो विचार व्यक्त किये थे, त्रिपाठी जी ने उनका पालन किया। कविता-कौमुदी (भाग दो) की भूमिका में उन्होंने लिखा—

'कविता क्यों की जानी चाहिए? इस प्रश्न पर हमें पहले विचार करना है।'

सन् 1920 में छठे गुजराती साहित्य परिषद् के सभापति के आसन से विश्व-वंद्य कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने हिन्दी में एक भाषण किया था। उसका एक अंश उन्हीं की हिंदी में हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं—

'कवि की साधना है क्या चीज ? यह और कुछ नहीं, बस आनन्द के तीर्थ में, रस-लोक में, विश्व-देवता के मन्दिर के आँगन में, सर्व मानव का मिलन-गान से विश्व-देवता की अर्चना। सब राहों की चौमुहानी पर कवि की बाँसुरी टेर से यह सुनाने के लिए है कि जिस प्रेम की राह में मुझको ईश्वर बुला रहे हैं वहाँ जाने का संबल है दुख को स्वीकार करना, आपने को भरपूर दान करना···'

23 नवम्बर 1924 के हिन्दी नवजीवन में श्रीयुत दिलीप कुमार राय और महात्मा गाँधी का एक वार्त्तालाप प्रकाशित हुआ है। महात्मा जी ने कला के विषय में श्रीयुत राय से यह कहा था—

"कलाकार जब कला को कल्याणकारी बनावेंगे और जन-साधारण के लिए उसे सुलभ कर देंगे, तभी उस कला का जीवन में स्थान रहेगा। जब कला सब लोगों की न रहकर थोड़े लोगों की रह जाती है, तब मैं मानता हूँ कि उसका महत्त्व कम हो जाता है।

हर एक ऐसे बुद्धि के व्यापार का मूल्य जिसमें कुछ विशेषता हो अर्थात् जिससे ग़रीब लोगों को वंचित रहना पड़ता हो, उस वस्तु से अवश्य कम है जो सर्व-साधारण के लिए होगी। वही काव्य और वही साहित्य चिरंजीवी रहेगा जिसे लोग सुगमता से पा सकेंगे, जिसे वे आसानी से पचा सकेंगे।"

एक ही समय के दो सर्वमान्य व्यक्तियों की सम्मतियों में हमें कवि का एक ही कर्त्तव्य स्पष्ट दिखायी पड़ता है और वह है लोक-कल्याण। रवीन्द्र ने कवि को सब राहों की चौमुहानी पर खड़े होकर चारों ओर के मानव-समाज को प्रेमगान सुनाने का आदेश किया है। महात्मा गाँधी 'कला को—कविता को—कल्याणकारी

बनाना और सर्वसाधारण के लिए सुलभ करना आवश्यक बताते हैं।' त्रिपाठी-जी ने इसीलिए 'लोक मंगल' को अत्यधिक महत्त्व दिया। उनकी दृष्टि में ईश्वर--भक्ति और देश-प्रेम दोनों का अर्थ था मनुष्य मात्र की सेवा। यथा :

ईश्वर भक्ति-लोक सेवा है एक अर्थ दो नाम।
वन में बस कैसे हो सकता है मनुजोचित काम।
पृथिवी पर सुख-शांति बढ़ाना देकर निज श्रम शक्ति,
मनुष्यता का अर्थ यही है और यही हरि-भक्ति।

—**मिलन** (1917)

मुक्तक रचनाएँ

पं. रामनरेश त्रिपाठी की काव्य-यात्रा **बालक-सुधार शिक्षा** (1911 ई.) से आरम्भ होती है। सात कविताओं वाली 26 पृष्ठों की इस पुस्तक में बालकों को ईश्वर-भक्ति, देश-प्रेम, माता-पिता की सेवा, समय-पालन आदि सद्‌गुणों की शिक्षा दी गयी है। एक दूसरी कविता-पुस्तक जो उन्होंने फतेहपुर से ही प्रकाशित की, वह है **मारवाड़ी मनोरंजन**। यद्यपि पुस्तक पर प्रकाशन-वर्ष मुद्रित नहीं है, फिर भी अनुमानतः पुस्तक 1912-13 में प्रकाशित हुई प्रतीत होती है। भूमिका-रहित इस पुस्तक में कुल दस कविताएँ संगृहीत हैं जिनमें से आठ कविताओं का सम्बन्ध मारवाड़ (राजस्थान) की प्रकृति और जन-जीवन से है। 'मारवाड़ का प्रभात' और 'शरद वर्णन' नामक रचनाओं में प्रकृति का सुन्दर चित्र कवि ने खींचा है। रेगिस्तान के जहाज ऊँट पर उन्होंने आठ छंदों में 'ऊष्ट्राष्टक' लिखा। त्रिपाठी जी ने राजस्थानी समाज को अत्यन्त सामीप्य से देखा-जाना था। वे समाज में व्याप्त कुरीतियों से खिन्न थे। अनमेल विवाह की कुप्रथा का मार्मिक चित्रण उन्होंने 'भयंकर विवाह' नामक कविता में किया है। **'कविता विनोद'** (1914 ई.) में उनकी सुप्रसिद्ध प्रार्थना **'ईश्वर वंदना'** शीर्षक से सर्वप्रथम प्रकाश में आयी। कुल बाईस मुक्तक रचनाओं के इस संग्रह में अधिकांश कविताएँ बालोपयोगी हैं। त्रिपाठी जी फतेहपुर में समाज-सुधारक के रूप में विख्यात हो गये थे। समाज में व्याप्त अंध-विश्वासों, रूढ़ियों कुरीतियों और सड़ी-गली मान्यताओं से संघर्ष करने के लिए किशोरों और युवकों का एक दल ही उन्होंने तैयार कर दिया था। श्री रामकुमार नेवटिया ने उनके बताये मार्ग का अनुसरण किया। उन दिनों शादी-ब्याह के अवसरों पर वेश्याओं का नाच-गाना आम बात थी और वह भी धनी परिवारों में तो एक अनिवार्यता थी। त्रिपाठी जी ने इस कुप्रथा का विरोध किया और अपने छात्रों को भी उसका विरोध करने की प्रेरणा दी। श्री रामकुमार नेवटिया ने प्रतिज्ञा की कि वे अपने विवाह में वेश्या-नृत्य नहीं होने देंगे। उनका विवाह हुआ और उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। त्रिपाठी जी ने

उस परमोत्साही, सुधारप्रिय और सदाचारी युवक को पुरस्कार स्वरूप अपनी यह कृति सानंद समर्पित की। इस पुस्तक की रचनाओं में भी बच्चों को ईश्वर-विश्वासी, माता-पिता-सेवी, देश-प्रेमी, आदर्श सदाचारी छात्र बनने की प्रेरणा दी गयी है। तमिल के महाकवि सुब्रह्मण्य भारती ने जिस प्रकार 'पाप्पा पाट्टु' में बच्चों को सीख दी है, उसी प्रकार त्रिपाठी जी भी बच्चों को भोर में जल्दी उठने, मिलजुल कर खेलने, पढ़ने और मेहनत करने की शिक्षा देते हैं। 'जादिगल् इल्लैयड़ि पाप्पा' कहकर भारती ने मानव-मात्र की समानता का पाठ बच्चों को पढ़ाया था, तो त्रिपाठी जी बालकों में वैसी ही भावना भरते हुए कहते हैं—

सब स्वदेशवासी मनुष्यों को समझो प्यारे बन्धु समान।
शुद्ध हृदय से मानो उनकी सेवा में अपना सम्मान॥
दीन-अनाथ, दरिद्र भिखारी, दुखियों का उपकार करो।
बनो स्वदेश जाति के नेता नव जीवन से प्यार करो॥

यह सन्देश कवि ने बाल-समुदाय को लक्ष्य करके अवश्य दिया है, परन्तु देश के प्रत्येक नागरिक के लिए भी यह उतना ही प्रेरणादायी है।

त्रिपाठी जी की जो तीन अन्य मुक्तक काव्य-कृतियाँ उल्लेखनीय हैं, वे हैं—**आर्य संगीत शतक** (1912 ई.), **क्या होमरूल लोगे** (1918 ई.) और **मानसी** (1927 ई.)। इनमें प्रथम दो साहित्यिक दृष्टि से उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, जितनी सैद्धान्तिक प्रचार और देश-प्रेम की दृष्टि से हैं। कलकत्ते में त्रिपाठी जी का सम्पर्क आर्यसमाज के प्रमुख श्री टेकचंद आर्य से हुआ था और वे आर्य समाज के सिद्धान्तों से बड़े प्रभावित हुए थे। फ़तेहपुर (मारवाड़) में तो वे 'समाजी' नाम से विख्यात ही हो गये। 'आर्य संगीत शतक' में आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रचारार्थ उनकी रचनाएँ संकलित हैं। 'क्या होमरूल लोगे' में भी राष्ट्रीय आंदोलनों के परिप्रेक्ष्य में लिखे गये उनके मुक्तक संगृहीत हैं। तत्कालीन ब्रिटिश शासन ने इस पुस्तक को जब्त कर लिया था।

'मानसी' कवि की मुक्तक रचनाओं का श्रेष्ठ संकलन है। संग्रहकर्त्ता श्रीयुत् गोपाल नेवटिया ने सन् 1927 ई. में प्रकाशित पहले संस्करण में कुल पचास कविताएँ संकलित की थीं। बाद के दो संस्करणों में कुछ अन्य कविताएँ जोड़ दी गईं। इस संग्रह में त्रिपाठी जी के कवि-रूप के पूर्ण दर्शन हो जाते हैं। जीवन की छोटी-बड़ी अनुभूतियों को कितनी भाव-प्रणव कुशलता के साथ कवि चित्रित करता है, यह देखते ही बनता है। कहीं कवि का मन-विहग प्रकृति की मनोहर छटा को निरख कर चहकने लगता है तो कहीं पराधीन देश की दयनीय स्थिति को देखकर अधीर हो उठता है; कहीं परमपिता परमेश्वर की असीम अनुकंपा से अभिभूत होकर विनयांजलि समर्पित करता है तो कहीं जन-जन को जागरण का प्रेरक संदेश देने लगता है; कहीं भारत की अतीत-चिंता में डूब जाता है तो कहीं विश्व-भर की

सुख-शांति और मुक्ति के लिए व्याकुल हो उठता है। प्रसाद गुण-समृद्ध इन कविताओं में भी कहीं-कहीं कवि ने मर्मस्पर्शी व्यंजनाएँ की हैं। प्रकृति-प्रेम, ईश्वर-निष्ठा, स्वदेश-भक्ति, लोक-मंगल आदि की सफल अभिव्यक्ति इन रचनाओं में हुई है।

त्रिपाठी जी गाँव के रहनेवाले थे। गाँवों की शोचनीय स्थिति से वे परिचित थे। दुख-दैन्य से ग्रस्त लोगों की दीन-हीन अवस्था से वे व्यथित थे। वे चाहते थे कि देश में दरिद्र नारायण की स्थिति में सुधार हो। दीन-दुखियों, अबल-असहायों के प्रति उनके मन में अत्यन्त सहानुभूति थी। उन्होंने घोषित किया कि जिस ईश्वर की खोज में हम इधर-उधर भटक रहे हैं, वह वास्तव के ग़रीबों की सेवा सेवा से ही सुलभ हो सकते हैं। यथा :

ना मन्दिर में, ना मस्जिद में, ना गिरजे के आसपास में,
ना पर्वत पर, ना नदियों में, ना घर बैठे, ना प्रवास में,
ना कुंजों में, ना उपवन के शांति-भवन या सुख निवास में,
ना गाने में, ना बाने में, ना आँसू में, नहीं हास में,
ना छंदों में, ना प्रबन्ध में, अलंकार ना अनुप्रास में,
खोज ले कोई राम मिलेंगे दीन जनों की भूख प्यास में।

कामना, वह देश कौन-सा है, मातृभूमि की जय, आह्वान, अतीत-चिन्ता, स्वतन्त्रता का दीपक, स्वदेश गीत आदि रचनाएँ देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत हैं। उनकी कविताओं का मुख्य विषय 'भारत' रहा है '। विधवा का दर्पण' जैसी इतिवृत्तात्मक कविता में भी उन्होंने दर्पण के माध्यम से स्वदेश के लिए प्राणों की आहुति देनेवाले वीर की पत्नी का अत्यन्त मार्मिक चित्रांकन किया है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने इस रचना को हिन्दी में 'उच्च स्थान की अधिकारिणी' घोषित किया था।

त्रिपाठी जी सुकुमार भावनाओं के कवि थे। प्रकृति-प्रेम, सौंदर्य-दर्शन, और प्रेम-चित्रण का जो मोहक संगम उनके काव्य में दिखायी पड़ता है, वह उन्हें द्विवेदी-युगीन कवियों से पृथक् कर देता है। उनका प्रकृति-चित्रण सहज, स्पष्ट और किसी भी प्रकार की अतिरंजना से मुक्त है। अपनी स्वच्छन्दतावादी प्रकृति के कारण ही वे हिन्दी-जगत को तीन मौलिक कल्पित कृतियाँ—**मिलन, पथिक** और **स्वप्न** दे पाये थे। छायावाद की पृष्ठभूमि तैयार करने में उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति ने महत्त्वपूर्ण योग दिया। श्रीधर पाठक, मुकुटधर पांडेय, रूपनारायण पांडेय के साथ-साथ रामनरेश त्रिपाठी ने भी ऐसी कविताओं का प्रणयन किया जिन्होंने छायावाद का विस्तृत क्षितिज उद्घाटित करने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। स्वच्छन्दतावादी कवियों की सहज जिज्ञासा के दर्शन हमें त्रिपाठी जी के काव्य में होते हैं जब वे 'रहस्य' शीर्षक कविता में पूछते हैं :

कौन-सा सन्देशा मौन कहता प्रसून से है,
खिल उठता है मुख जिससे सुमन का;
कौन से रसिक को रिझाती है सुना के गान,
कौन जानता है भेद कोयल के मन का।

वाक्य-विन्यास की यह सादगी अनूठी है। त्रिपाठी जी काव्य-भाषा के वस्तुतः सिद्धहस्त प्रयोक्ता थे।

त्रिपाठी जी की कविताओं में कहीं-कहीं उर्दू का प्रयोग भी देखने में आता है। उर्दू शैली में की गयी उनकी रचनाएँ काफ़ी लोकप्रिय भी हुई थीं। अन्वेषण, उपचार, हार ही में जीत है, वह देश कौन-सा है, शाम आदि रचनाएँ उर्दू शैली में रचित हैं। त्रिपाठी जी की कुछ विनोदपूर्ण रचनाएँ भी इस संग्रह में संकलित हैं। चंद, नया नखशिख, हैट के गुण, नारी, काश्मीर, देख ली हमने मसूरी आदि रचनाओं में व्यंग्य-विनोद की फुहार देखने योग्य है। निरंकुश अंग्रेज शासकों के अत्याचारों पर प्रहार करते हुए 'हैट' के माध्यम से कवि का व्यग्य द्रष्टव्य है—

दृग को, दिमाग को, ललाट को, श्रवण को भी
धूप से बचाती, अति सुख पहुँचाती है।
बोट से बचाती, मार-पीट से बचाती,
यह अपढ़ देहातियों में भय उपजाती है।
पर इसमें है उपयोगिता विचित्र एक,
योरप निवासियों की बुद्धि में जो आती है।
सिर पर हैट रख चाहे जो अनर्थ करो,
हैट यह ईश्वर की दृष्टि से बचाती है॥

त्रिपाठी जी का जीवन ही कवितामय था। गद्य भी उन्होंने लिखा तो कविता के ही रंग में। कविता कौमुदी की भूमिकाएँ, व्यंग्यात्मक रचनाएँ, प्रेरक व्यक्तित्वों की चरित-छटाएँ : सब पर कविता का जादू छाया दिखायी पड़ता है। त्रिपाठी जी ने अनुभव किया था कि भारतीय जीवन ही कवितामय है। यहाँ के जीवन के हर व्यापार में कविता का संगीत समाया हुआ है। कविता-रहित जीवन में प्राणों का संचार नहीं हुआ करता। कविता सदैव उनकी प्रेरक शक्ति रही, जीवनदायिनी रही। अपनी ही रचनाओं से उन्होंने धैर्य और साहस बटोरा। 'मानसी' के एक छन्द में वे कहते हैं :

आये और चले गये, कितने शिशिर बसंत।
राही तेरी राह कहीं न आया अन्त।
कहीं न आया अन्त, तुझे तो चलना ही है।
जीवन की यह आग जलाकर जलना ही है।

कविता ने उनके जीवन को अद्भुत जीवट से भर दिया था।

प्रबन्ध रचनाएँ

यदि प्रार्थना, अन्वेषण और स्वदेश-गीत जैसी मुक्तक रचनाओं ने त्रिपाठी जी को प्रसिद्धि का विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया तो उनकी प्रबन्ध कृतियों ने उन्हें सारस्वत कीर्ति के उच्चतम शिखरों पर बिठाया। उनके तीन खण्ड काव्य प्रकाश में आये, **मिलन** (1917 ई.), **पथिक** (1920 ई.) और **स्वप्न** (1928 ई.)। चूँकि वे राष्ट्रीय भावधारा के कवि थे, अतः तीनों खण्ड-काव्यों का प्रणयन उन्होंने राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर ही किया। इन प्रबन्ध कृतियों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनके कथानकों की उद्भावना स्वयं कवि ने अपनी कल्पना से की है। त्रिपाठी जी कविता में स्वछन्द प्रकृति के पक्षधर थे। परम्परा का अनुसरण करना उनके कल्पनाशील स्रष्टा कवि को स्वीकार्य नहीं था। देशकाल को चित्रित करना और युग की धड़कनों को स्वर देना उन्हें अभीष्ट था। वे पौराणिक कथाओं पर नयी कलई चढ़ाने के पक्ष में नहीं थे। वे मानते थे कि इससे ऐतिहासिकता नष्ट नहीं, तो कम से कम प्रभावित तो होती ही है। इसीलिए उन्होंने युग के अनुरूप कल्पित कथाओं की रचना की और अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर उन्हें प्रतिष्ठित किया। प्रकृति का वर्णन करने में उनकी कल्पना ने अद्भुत कौशल दिखाया और वे समकालीन जीवन के समर्थ चितेरे बनकर उभर आये। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनकी इस महत्त्वपूर्ण सर्जनात्मक भूमिका का उल्लेख करते हुए लिखा—

> "मिलन, पथिक और स्वप्न नामक इनके तीनों खंड काव्यों में इनकी कल्पना ऐसे मर्म-पथ पर चली है, जिसपर मनुष्य मात्र का हृदय स्वभावतः ढलता आया है। ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं के भीतर न बँधकर अपनी भावना के अनुकूल स्वछन्द संचरण के लिए कवि ने नूतन कथाओं की उद्भावना की है। कल्पित आख्यानों की ओर यह विशेष झुकाव स्वच्छन्द मार्ग का अभिलाष सूचित करता है। इन प्रबन्धों में नरजीवन जिन रूपों में ढालकर सामने लाया गया है, वे मनुष्य मात्र का मर्मस्पर्श करनेवाले हैं तथा प्रकृति के स्वच्छन्द और रमणीय प्रसार के बीच अवस्थित होने के कारण शेष सृष्टि से विच्छिन्न नहीं प्रतीत होते।"

इन खंड काव्यों के पात्र जन-साधारण के बीच से उभरकर आते हैं। उनका संघर्ष एवं उनकी उपलब्धियाँ सामान्येतर नहीं हैं। उनके मनोभाव, उनके दुख-सुख, उनका रहन-सहन, उनके आचार-विचार, कहीं विलगता के संकेत नहीं देते। यही कारण है कि उनके खण्ड काव्यों के कथानक घर-घर के कथानकों के रूप में आदृत हुए।

मिलन का प्रकाशन त्रिपाठी जी ने 1917 ई. में किया था, जब वे इलाहाबाद में रहने लगे थे। इसका पहला सर्ग 'मर्यादा' नाम की पत्रिका में प्रकाशित हुआ।

साहित्यिक समुदाय ने इसकी पर्याप्त प्रशंसा की। बाद में कवि ने चारों सर्ग पूरे कर डाले। इस प्रेरक काव्य को उन्होंने राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन को समर्पित किया था—'प्रिय पुरुषोत्तमदास मित्रवर सहृदय सुगुणागार, प्रेम सहित स्वीकार करो यह होली का उपहार।'

त्रिपाठी जी की आरम्भिक रचना, **मिलन** की कहानी मिलननगर की कहानी है, जो विदेशियों से आक्रान्त है। युवक आनन्द और उसकी पत्नी विजया, नायक और नायिका, दोनों अपने देश की दुर्दशा से अत्यन्त मर्माहत हैं। जब सेवा का व्रत लेकर दोनों घर से निकल पड़ते हैं, किन्तु नदी पार करते समय भयानक तूफ़ान उठने से दोनों बिछुड़ जाते हैं। दोनों की भेंट बारी-बारी से एक मुनि से होती है। युवक मुनि को अपने बारे में बताता है और कहता है कि मिलन नगर को विदेशियों के चंगुल से मुक्त करना ही उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है, यह उसके पिता का आदेश भी है। वस्तुतः मुनि ही उसके पिता हैं, यह रहस्य युवक नहीं जानता। मुनि युवक को देश-सेवा की शिक्षा देते हैं और कर्त्तव्य-पथ पर बढ़ने की महती प्रेरणा देकर उसकी सफलता की मंगल-कामना व्यक्त करते हैं। युवक गाँव-गाँव घूमता हुआ युवकों को संगठित करता है। अत्याचार सहते-सहते एक दिन प्रजा विद्रोह कर देती है। युवक, मुनि और विजया तीनों अपने-अपने दल-सहित शत्रु का सामना करते हैं और अन्ततः विजयश्री प्राप्त कर देश को स्वातन्त्र्य दिलाते हैं। घायल मुनि अपने प्राण त्याग देते हैं और युवक आनन्द और विजया का स्वतन्त्र देश में पुनर्मिलन हो जाता है।

आततायी विदेशी शासक से मातृभूमि को मुक्त करने की कहानी '**पथिक**' में भी कही गयी है। इस काव्य का नायक भी एक युवक है, जो प्रकृति की सुंदरता से अत्यधिक अभिभूत है। प्रकृति के एकांत को वह असीम सुख का केन्द्र मानता है। अपनी पत्नी के साथ रहकर गृहस्थी का सुख लेना उसे प्रिय नहीं है। उसकी भेंट एक साधु से होती है, जो उसे जीवन की कर्मभूमि पर उतरने की प्रेरणा देते हैं। वह उसे समझाते हैं कि 'यदि उद्दीप्त हृदय में सच्चे सुख की है अभिलाषा, वन में नहीं जगत में जाकर करो प्राप्ति की आशा।' साधु से प्रेरणा पाकर युवक पथिक जन-जन के बीच जाता है और देश को मुक्त कराने के लिए उनका संगठन करता है। सारा देश पथिक के पद-चिह्नों पर चलने को उद्यत हो जाता है और असहयोग का मार्ग निश्चित कर लेता है। घबराकर राजा पथिक को बन्दी बनाने की आज्ञा देता है। बंदी अवस्था में पथिक से अपराध की स्वीकृति और क्षमा-याचना की अपेक्षा की जाती है। किन्तु मातृभूमि को मुक्त करने का बीड़ा उठाने वाला स्वाभिमानी पथिक कहाँ झुकता ? उसकी आँखों के सामने ही उसकी पत्नी विषपान कर लेती है और पुत्र की हत्या कर दी जाती है। अत्याचार की पराकाष्ठा से क्षुब्ध होकर प्रजा प्रतिहिंसा पर उतारू होने लगती है तो पथिक जो शांति,

अहिंसा और प्रेम की मूर्ति है, उन्हें रोकता है। अन्त में अपने प्राणों का उत्सर्ग कर वह प्रजा को राजा से बिल्कुल विमुख कर देता है। असहयोग का वातावरण राजा को गद्दी छोड़ने पर विवश कर देता है। स्वतन्त्र देश में नव प्रजातन्त्र का उदय होता है।

'स्वप्न' में युवक वसंत और उसकी पत्नी सुमना के शौर्य और त्याग की गाथा चित्रित है। वसंत सौंदर्य और प्रेम का पुजारी है। उसका युवा मन अपने कर्त्तव्य को निश्चित कर पाने में असमर्थ है। एक बार उनके स्वतन्त्र देश पर विदेशी आक्रमण कर देते हैं। विदेशियों की शक्ति के आगे राजा निरुपाय है और वह युद्ध में जनता का सक्रिय सहयोग चाहता है। वीर युवकों की टोलियाँ प्राण हथेली पर लेकर निकल पड़ती हैं। सुमना को दुख है कि उसका पति उसके मोह में फँसकर अपने कर्त्तव्य को भुला बैठा है। वह वसंत की उदासीनता देखकर तड़प जाती है। कोई उपाय न पाकर वह स्वयं पुरुष वेश में युद्धभूमि की ओर प्रस्थान कर देती है। विरही वसंत सुमना की याद में खोया रहता है। एक दिन पुरुष वेश में सुमना फिर पति के पास आती है और उसे स्वदेश की मान-रक्षा के लिए बलि-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। सुमना के शौर्य की बातें वसंत तक पहुँच चुकी होती हैं। अब वह भी कमर कस लेता है और युवकों के दल का अगुवा बनकर शत्रु-सेना पर टूट पड़ता है। विदेशी आक्रामक को मुँह की खानी पड़ती है और स्वदेश की स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रहती है। सुमना वसंत से पुनः मिलती है।

इस प्रकार इन तीनों खंड-काव्यों में कवि ने स्वदेश की स्वतंत्रता-प्राप्ति और उसकी रक्षा के लिए जूझनेवाले वीर युवकों और वीरांगनाओं के प्रेरणादायी चरित्र उजागर किये हैं। **मिलन** का नायक आनंद स्वदेश को स्वतंत्र कराने के लिए विदेशी शासक से लोहा लेता है तो 'स्वप्न' का नायक वसंत स्वतंत्रता को बचाने के लिए संघर्ष करता है। स्वतंत्रता हमारा पैतृक अधिकार है, प्राण देकर भी इसकी रक्षा करनी चाहिए, यह संदेश तीनों ही काव्यों में मुखर हुआ है। यदि **'मिलन'** का नायक कहता है कि 'पर-पद-दलित स्वदेश भूमि का चलो करें उद्धार, हम मनुष्य होकर क्यों छोड़ें निज पैतृक अधिकार?' तो **स्वप्न** का नायक भी देश के युवकों का आह्वान करते हुए कहता है—

रवि, शशि, उडुगण, गगन, दिशाएँ, हैं गिरि, नदी, मेदिनी, जब तक;
निज पैतृक धन स्वतंत्रता को क्या तुम तज सकते हो तब तक?

संसार की कोई भी स्वाभिमानी जाति 'पर-पद-दलित, पर-मुखापेक्षी, पराधीन, परतंत्र, पराजित' होकर नहीं जीती, यह सत्य कवि ने ओजस्वी शब्दों में अपने काव्यों में व्यक्त किया है। **पथिक** में कवि देश के परतंत्र और परमुखापेक्षी लोगों को प्रताड़ित करते हुए पूछता है—

मस्तक ऊँचा हुआ तुम्हारा कभी जाति-गौरव से ?
अगर नहीं तो देह तुम्हारी तुच्छ अधम है शव से ।

पथिक त्रिपाठी जी की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। यह हिन्दी का श्रेष्ठ राष्ट्रीय काव्य है। इसका प्रणयन त्रिपाठी जी ने उन दिनों किया जब महात्मा गाँधी देश के राजनीतिक क्षितिज पर प्रकट हो चुके थे और अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध असहयोग-व्यूह-रचना में संलग्न थे। गाँधीजी द्वारा निर्दिष्ट सत्याग्रहों से त्रिपाठी जी भी जुड़ चुके थे। असहयोग का प्रयोग महात्मा गाँधी की अद्भुत और अभूतपूर्व सूझ-बूझ थी। त्रिपाठी जी इससे प्रभावित हुए। 'पथिक' रचना की पृष्ठ-भूमि पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने अपनी अपूर्ण आत्मकथा में लिखा है—"गाँधी जी देश में आ चुके थे और उनके सत्याग्रह और असहयोग की चर्चा सर्वत्र हवा में गूँज उठी थी। 1920 में मैं रामेश्वरम् की यात्रा पर गया। वहाँ पहले पहल मैंने समुद्र देखा। उस समय मुझे इतना हर्ष हुआ कि मैं समुद्र के तट में दोनों पैर डाल कर एक शिला पर विमुग्ध-सा होकर देर तक बैठा रहा। उसी अवस्था में मेरे मुँह से एक पद्य आप से आप निकला था, जिसे मैंने 'पथिक' के पहले सर्ग में, आरम्भ ही में स्थान दे दिया है। वहाँ से उठने के बाद मेरे सिर में इस बात का एक नशा-सा सवार हुआ कि गाँधी जी के सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन से देश की स्वतन्त्रता कैसे मिल सकती है? इस पर मैं एक खंड-काव्य लिखूँ। मैं इलाहाबाद आया, तब सबसे पहले मैं अपना वह नशा उतारने में लग गया और 21 दिनों तक मकान की पर छत टिन के एक छप्पर के नीचे बैठकर और वहीं खा-पीकर और सोकर भी मैंने 'पथिक' लिख डाला।" 'पथिक' के नायक के सम्बन्ध में त्रिपाठी जी मानते हैं कि उसमें गाँधी जी की प्रतिच्छवि थी। अद्भुत बात तो यह हुई कि पथिक के प्रयोग की सफलता गाँधी जी के लिए सुखद भविष्यवाणी साबित हुई। 'पथिक' में अहिंसा, क्षमा और असहयोग की जो प्रेरणा, "साथ न दो नृप का कोई उसके अधर्म शासन में" कवि ने दी है, उसकी परिणति अंततः भारत की मुक्ति में होती है। सन् 1920 ई. में ही गाँधी जी को अपने काव्य का देवता मानकर त्रिपाठी जी ने स्वतंत्र भारत की जो कल्पना की, वह सत्ताईस वर्ष बाद 1947 ई. में प्रतिफलित हुई। सचमुच भविष्यद्रष्टा कवि थे राम नरेश त्रिपाठी। उनका अक्षर-अक्षर सत्य प्रमाणित हुआ। यथा —

हुए स्वतन्त्र सुसभ्य सच्चरित सच्चे देश निवासी।
घर-घर में सुख-शांति छा गई रही कहीं न उदासी।
एक शुद्ध सच्चे प्रेमी ने आत्म-शक्ति-साधन से।
मुक्त कर दिया एक देश को नरक-तुल्य शासन से।

'पथिक' काव्य देशभक्तों के लिए मुक्ति का मंत्रकाव्य था। देश के चोटी के नेताओं और विद्वानों ने इस युगांतरकारी राष्ट्रीय काव्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की

थी। काव्य को पढ़कर गाँधी जी ने लिखा था : "भाई रामनरेश जी ! 'पथिक' एकबारगी मैंने रसपूर्वक पढ़ लिया है। पुस्तक मेरे सामने ही है। वखत कब मिले और कब फिर पढ़ूँ। अब तो इतना ही कहकर संतुष्ट रहूँगा कि आपकी भाषा की सेवा से भाषा ज्यादह भूषित बनें और उसका ज्यादह प्रचार हो।"

पं. मदनमोहन मालवीय, पं. श्रीधर पाठक, पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', कविवर मैथिलीशरण गुप्त, सुकवि लोचन प्रसाद पांडेय, पं. नाथूराम शंकर शर्मा, बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, पं. मातादीन, सेठ जमनालाल बजाज प्रभृति मनीषियों द्वारा प्रशंसित 'पथिक' की हिन्दी में अब तक सत्तर से अधिक आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। हिन्दी से संस्कृत में अनूदित होनेवाली इनी-गिनी रचनाओं में 'पथिक' का विशिष्ट स्थान है। वास्तव में यह खड़ी बोली हिन्दी का प्रतिनिधि काव्य है।

त्रिपाठी जी के तीनों ही खंड-काव्य प्रशस्त परिनिष्ठित हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं। 'मिलन' की रचना उन्होंने इलाहाबाद में की, 'पथिक' की प्रेरणा उन्हें रामेश्वरम् में मिली तथा 'स्वप्न' की सर्जना उनकी काश्मीर-यात्रा की सुखद परि-णति थी। तीनों ही काव्यों में स्वदेश की स्वतन्त्रता ही इष्ट है। पराधीन भारत के कवि ने मुक्ति की कामना से प्रेरित होकर ये काव्य लिखे थे, अतः इनके चरित-नायक मुक्ति पुरुष के रूप में उभरकर जन-मन में प्रतिष्ठित हो गये। राष्ट्रीय भावधारा के ये ओजस्वी कथानक अंग्रेज़ी शासन को खटकने लगे। सरकार ने इन काव्यों पर रिपोर्ट लिखने का काम लाला सीताराम जी को सौंपा। उन दिनों वे सरकारी रिपोर्टर थे। परन्तु उन्होंने अपनी रिपोर्ट से तीनों काव्यों को सरकारी पंजे में जाने से बचा लिया था। इससे पता चलता है कि राष्ट्रीय-साहित्य लिखना उन दिनों कितने बड़े साहस का काम हुआ करता था। त्रिपाठी जी साहसी और स्वाभिमानी कवि थे। उन्हें अपने देश के युवकों को जगाना था। उन्होंने निर्भय होकर लिखा।

त्रिपाठी जी का कवि-रूप भी इन तीनों काव्यों में द्रष्टव्य है। प्रकृति के अनन्य पुजारी होने के कारण तीनों काव्यों का आरम्भ वे प्रकृति से ही करते हैं। 'स्वप्न' में तो उनका प्रकृति-चित्रण अद्भुत दक्षता के साथ उभर कर आया है। 'स्वप्न' की रचना उन्होंने कश्मीर में की थी जब वे अपने मित्र श्रीगोपाल नेवटिया के साथ वहाँ गये थे। वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों ने उनका मन मोह लिया था। उन दृश्यों को उन्होंने लगातार 'पंद्रह दिनों तक पहलगाँव (कश्मीर) में, हिम-पर्वतों से घिरे हुए, हरित-पुष्पित-सुरभित सघन वन से अलंकृत एक अंतराल में, चाँदी की धारा के समान उज्ज्वल और प्रखर प्रवाहित नाले के तट पर, तंबू में रहकर तथा गुलमर्ग में', शब्दांकित किया था। एक दृश्य देखें —

> इन्द्रधनुष खेला करता है झरनों से हिलमिलकर दिन भर,
> तृप्त नहीं होते हैं दृग यह दृश्य देख अनिमेष अवनि पर

होता है इस नील झील में श्यामा का आगमन सुखद अति,
जल क्रीड़ा करते हैं तारे लहरें लेता है रजनी-पति।

और यह भी—

हिम शृंगों को छोड़ रही हैं दिनकर की किरनें क्षण-क्षण पर,
तिरती हैं वे घन नौका पर नभ-सागर में विविध रूप धर।

उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त कवि ने एक और प्रबन्ध काव्य 'हनुमानचरित' (अप्रकाशित) की रचना भी आरम्भ की थी, परन्तु उसमें मन न रमने के कारण वे उसे पूरा नहीं कर पाये। इस काव्य को लिखने की प्रेरणा उन्हें पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' से मिली थी। 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' की तरह संस्कृत के छंदों में वे इस प्रबन्ध काव्य की रचना करना चाहते थे। वंशस्थ, उपजाति, मालिनी आदि छंदों का प्रयोग करते हुए उन्होंने कुछ सर्ग पूर्ण भी किये। परन्तु उन्हें लगा कि भाषा उनका साथ नहीं दे रही है और सहजता से हटकर कृत्रिमता धारण करती जा रही है। अपनी प्रकृति के विपरीत भाषा का प्रयोग उन्हें प्रिय नहीं था। फलतः उनका यह काव्य अपूर्ण ही रह गया।

कथा-साहित्य

पं. रामनरेश त्रिपाठी एक समर्थ कथाकार थे। उन्होंने कहानियाँ कम अवश्य लिखी, परन्तु जो भी लिखीं, हृदय से लिखीं, मर्मस्पर्शी लिखीं। वे अपनी कहानियों के स्वयं साक्षी थे। उनकी कहानियाँ कल्पना-जगत् की सैर नही करातीं, वरन् हमें जीवन के यथार्थ-लोक में ले जाती हैं। अधिक नहीं, कम से कम पात्रों से वे हमें मिलवाते हैं और उनके पात्र अपना दुख-सुख, हमारे साथ बाँटते हैं। कल्पित कहानियों में उनके लिए कोई रस नहीं था। वे भ्रमणशील साहित्यकार थे। सारे भारत की उन्होंने कई बार यात्राएँ कीं। कोइरीपुर जैसे छोटे गाँव से लेकर कलकत्ता जैसे महानगर में वे रह चुके थे। भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले लोगों से मिलने, उनके साथ रहने और उन्हें समझने का अवसर उन्हें खूब मिला था। यही कारण है कि कहानियों की विषय-वस्तु की खोज के लिए उन्हें बुद्धि का व्यायाम नही करना पड़ा। व्यक्तियों और घटनाओं का साक्षात्कार ही अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त था। उनकी मान्यता थी कि कहानी तो मनुष्य के जन्म ही से साथ है। मनुष्य का जीवन स्वयं एक कहानी है। जीवन के प्रत्येक क्षण में वह किसी न किसी कहानी का कोई-न-कोई अंग बनाता ही रहता है। त्रिपाठी जी ने मनुष्य-जीवन की बारीकियों को देखा। उन्होंने देखा कि उसका चरित्र, उसका स्वभाव, उसके कार्यकलाप किस तरह नित नूतन कहानियाँ गढ़ते चले जाते हैं। मानव-जगत के ऐसे ही कुछ जीवंत चरित्रों और मार्मिक प्रसंगों को उन्होंने अपनी तूलिका से रँग दिया और वे कहानियाँ बन गये।

त्रिपाठी जी अति व्यस्त साहित्यकार थे। वे एक साथ कई विधाओं मे रचना किया करते थे। प्रकाशन-जगत में अनेक प्रकार की रचनात्मक वचनबद्धताओं के कारण वे अपेक्षाकृत दो कथा-संकलन ही निकाल सके। उनका पहला कहानी-संग्रह 'तरकस' 1934 ई. में प्रकाश में आया तथा दूसरा 'आँखों देखी कहानियाँ' 1953 ई. में प्रकाशित हुआ। 'तरकस' में कुल दस कहानियाँ संगृहीत हैं--प्रेम की भूमिका, कवि का स्वप्न, उन बच्चों का क्या हुआ, सहसा विदधीत न क्रियाम्, भीखिन मँगवश्, कुणाल, संसार, कभी मैं भी दुलहिन थी, बफाती चाचा और नयी बहू पुरानी सास। अपने दूसरे संग्रह में उन्होंने कुल ग्यारह कहानियाँ दी हैं जिनमें से पाँच कहानियाँ प्रेम की भूमिका (प्रेम की पहली पीड़ा के संशोधित शीर्षक से), उन बच्चों का क्या हुआ, भीख न मँगवश्, बफाती चाचा और नयी बहू, पुरानी सास पहले संकलन से ली गयी हैं। दूसरे संग्रह की नयी कहानियाँ हैं—चलो बहन घर चलें, वह फिर नहीं हँसी, सुहागरात का उल्लू, दातादीन, चौहत्तर बरस का जवान और ग़रीब का हृदय। इस प्रकार उनकी कहानियों की संख्या बीस से भी कम है, परन्तु इनमें से अधिकांशतः सत्य घटनाओं पर आधारित होने के कारण सजीव और प्रभावोत्पादक हैं।

हिन्दी-जगत में त्रिपाठी जी की कहानियाँ उतनी चर्चित या प्रशंसित नहीं हुईं, जितनी उनकी कविताएँ हुई थीं। परन्तु जिन विद्वानों, समालोचकों और सहृदय पाठकों ने ये कहानियाँ पढ़ीं, वे कहानीकार के चित्रण की जीवंतता और उनकी सत्यता से अभिभूत हुए बिना नहीं रहे। सुप्रसिद्ध साहित्य-मनीषी डॉ. वासुदेव-शरण अग्रवाल ने इन कहानियों पर अपनी सम्मति देते हुए कहानीकार को 14 दिसम्बर 1953 ई. के पत्र में लिखा था—"आपकी लेखनी धन्य है। आँखों देखी कहानियाँ पढ़ रहा हूँ और सोचता हूँ, जीवन का सत्य साहित्य के मुलम्मों से कितना महान् है। काश हमारे साहित्यिक कल्पना के नाग न उत्पन्न कर जीवन से ही अमृत भावों के पाठ पढ़ते। 'बफाती चाचा' का स्वर्गीय देश कहाँ चला गया? बम्हरौली की बुढ़िया में इतनी टीस है कि हृदय विदीर्ण होता है। 'चौहत्तर बरस का जवान' कहानी जनपदीय जीवन के वरदानों का परिचय देती है जिन्हें शिक्षा झुलसा रही है। गोमती मल्लाह का हृदय सचमुच कोयले में चमकता हुआ हीरा है। शिक्षा के पहाड़ तुल्य बोझे से दवे हुए मन को इस कहानी में नयी स्फूर्ति मिली··!" वास्तव में कवि का स्वप्न, सहसा विदधीत न क्रियाम् और कुणाल को छोड़कर जो क्रमशः कल्पनापरक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरातल पर विरचित हैं, अन्य सभी सामाजिक कहानियाँ वर्तमान जीवन की वास्तविकता से संपृक्त हैं।

'उन बच्चों का क्या हुआ' एक ऐसी कहानी है, जिसमें बम्हरौली की एक निर्धन बुढ़िया बुधनी के संघर्षपूर्ण जीवन की झलक दर्शायी गयी है। वह किस प्रकार

परिस्थितियों से जूझती हुई असीम धैर्य, साहस और आत्म-विश्वास के साथ अपने नन्हें नातियों का भरण-पोषण करती है, इसे लेखक ने अपनी आँखों से देखा था। वह ग़रीब बुढ़िया अपने बच्चों को एक कोठिले में सुलाकर उनके पास एक लोटा पानी का रखकर, झोंपड़े के दरवाज़े पर टाटी लगाकर सात मील पैदल चलकर इलाहाबाद के जानसनगंज की सड़क पर बैठकर मर्मभेदी स्वर में भीख माँगा करती थी। लेखक ने पैसों से ही उसकी सहायता नहीं की, उसकी शोचनीय स्थिति से भारत सरकार के तत्कालीन कानून मंत्री डॉ. कैलाशनाथ काटजू को भी अवगत कराया और उसकी सहायता के लिए अनुरोध भी किया। लेखक उन दोनों बच्चों की देखभाल सरकार के ज़िम्मे करवा देना चाहते थे। परन्तु बुढ़िया का उत्तर था—'वे बच्चे ही तो मेरे बेटे की यादगार है। उन्हें मैं जीते जी आँखों से ओझल नहीं होने दूँगी।' बुढ़िया का प्रेम और आत्माभिमान देखकर त्रिपाठीजी श्रद्धाभिभूत थे। वे लिखते हैं—''बुढ़िया की कहानी मैंने हिन्दी की एक मासिक पत्रिका को लिख कर भेजी। वहाँ से मेरे नाम सात रुपये का मनीआर्डर आया। मुझे सभ्य संसार पर हँसी आयी, जो वास्तव में दु:खी है, उसके पास तो कोई नहीं पहुँचता। जो आराम से बैठकर उस दु:ख को लिख डालता है, उसे रुपये मिल जाते हैं। एक दिन बुढ़िया पैसा माँगती हुई मिली, मैंने सातों रुपये उसे दे दिये।'' कितनी दुखद वास्तविकता है यह संसार की। अन्त में, एक दिन मूसलाधार बरसात को चीरती हुई बुधनी बच्चों के पास लौट रही थी, कि आँगन तक पहुँचते-पहुँचते उसके प्राण पखेरू उड़ गये। मरते दम उसके ओठों पर एक ही शब्द था—'बच्चा।' यही वह मार्मिक कहानी है जो हृदय को झकझोर देती है। अन्तिम दृश्य को कितनी सजीवता से चित्रित किया है लेखक ने—''प्रेम ने प्रकृति का सामना किया। बुढ़िया हवा, पानी, बिजली और अंधकार से युद्ध करती, पद-पद पर प्रकृति को परास्त करती हुई आगे बढ़ी। पानी से वह तर हो रही थी। उसकी आँखों में बच्चों के प्रेम का प्रकाश था, उसकी टाँगों में बच्चों के प्रेम का बल था, उसके हृदय में बच्चों के प्रेम का आकर्षण था। वह चलती ही रही। अपने शरीर की उसे सुध नहीं थी। उसे किसी की सुध नहीं थी। केवल एक ही सुध थी—'बच्चे मेरी बाट जोहते होंगे।' डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने सही तो कहा था—'बम्हरौली की बुढ़िया में इतनी टीस है कि हृदय विदीर्ण होता है।'

त्रिपाठी जी की कहानियों में 'दफाती चाचा' सर्वाधिक लोकप्रिय कहानी रही है। यह कहानी 'तरकस' में प्रकाशित हुई थी। सांप्रदायिक सद्भाव पर आधारित यह कहानी आगे चलकर लेखक के इसी नाम से विरचित नाटक का आधार बनी थी। यह कहानी प्रकाशित होते ही लोकप्रियता के शिखर पर चढ़ गयी। फैजाबाद के तत्कालीन कमिश्नर और त्रिपाठी जी के साहित्यिक मित्र ए. जी. शेरिफ़ ने इसकी मुक्तकंठ से अनुशंसा की और पूज्य गाँधी जी के निजी सचिव

महादेव भाई देसाई ने इसका अंग्रेजी अनुवाद करके 'हरिजन' में प्रकाशित कराया था। इस कहानी में एक हिन्दू और एक मुसलमान परिवार के मधुर सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। बफाती मियाँ मुहल्ले के सभी लोगों के चाचा थे। बाद में सांप्रदायिक शक्तियों का ऐसा कुचक्र चलता है कि तनाव और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में बफाती मियाँ सद्भाव, प्रेम और एकता का जो आदर्श उपस्थित करते हैं, वही कहानी का प्राण है, सन्देश है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए चल रहे राष्ट्रीय आंदोलनों के दिनों में यह कहानी एकता और भाईचारे की महती भावना की अनुगूँज बन गयी थी।

त्रिपाठी जी की कुछ कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में भी देखने को मिलती हैं। ऐसी एक कहानी है, 'भामती' (नवनीत, अक्टूबर 1952), जिसमें उन्होंने वेदान्त के महान् भाष्यकार वाचस्पति की धर्मपत्नी के महान् त्याग का चित्र खींचा है। भामती एक ऐसी आर्य नारी है, जिसने पति के पुण्य कार्य में अपनी युवावस्था दान कर दी; अपने शारीरिक सुखों के लिए कभी पति से शिकायत नहीं की; बल्कि अर्धांगिनी शब्द को पूर्ण रूप से अपने जीवन में सार्थक कर दिखाया। त्रिपाठी जी की कहानियाँ केवल आदर्श का चित्रण ही नहीं करती, अपितु उस ओर उन्मुख होने की प्रेरणा भी देती हैं।

उपन्यास

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का युग जागरण-सुधार-युग के नाम से भी जाना जाता है। इस काल की रचनाओं में राष्ट्रीय जागरण और सामाजिक सुधार का स्वर ही मुख्य रूप से मुखरित हुआ है। अशिक्षा, अंध-विश्वासों और सामाजिक रूढ़ियों के विरोध में जागरण का अंकुरण भारतेन्दु-युग में ही हो चुका था। द्विवेदी-युग में उसका पल्लवन दिखायी पड़ता है। ऐयारी और जासूसी उपन्यासों की जगह ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यास लेने लगे। इस युग के उपन्यासकारों ने मनोरंजन की अपेक्षा 'मार्गदर्शन' का आदर्श अपनाया। द्विवेदी जी घोषणा कर चुके थे— 'वह समय गया जब उपन्यास दो घंटे दिल-बहलाव मात्र का साधन समझा जाता था। निकम्मे बैठे हुए हैं, लाओ कुछ पढ़ें। वक़्त नहीं कटता, लाओ 'चपला' या 'चंचला' ही देख जायें। उपन्यास जातीय जीवन का मुकुर होना चाहिए।' रामनरेश त्रिपाठी के उपन्यास इसी पृष्ठभूमि में लिखे गये।

त्रिपाठी जी एक देशभक्त साहित्यकार थे। साहित्य उनके लिए माध्यम था, लक्ष्य तो उनका एक ही था और वह था राष्ट्रमंगल। जिस रचना से देश का हित सधता था अथवा सध सकता था, उन्होंने उसी का प्रणयन किया। राष्ट्रीय पुनरुत्थान और सामाजिक अभ्युदय के लिए कविता सर्वाधिक सशक्त माध्यम थी, त्रिपाठी जी ने उसे अपनाया और इस दिशा में अपना कीर्तिमान भी स्थापित

किया। उपन्यास और चरित साहित्य को भी वे इसी पुनीत उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में महत्त्वपूर्ण साधन मानते थे। अतः उन्होंने उद्देश्यपूर्ण ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों की रचना का व्रत लिया। उनका यह विचार था कि समाज और देश का मानचित्र तब तक नहीं बदल सकता, जब तक देश की नारी का उदात्त चित्र प्रेरणा-पुंज बनकर लोगों के सामने नहीं उभरेगा। इस महत्कार्य की सिद्धि के लिए उन्होंने भारत की वीर, त्यागमयी, आदर्श नारी को अपने उपन्यासों की नायिका बनाया।

त्रिपाठी जी के पाँच उपन्यास हैं: **वीरांगना** (1911 ई.), **वीरबाला** (1911 ई.), **मारवाड़ी और पिशाचिनी** (1912 ई.), **सुभद्रा** (1917 ई.) तथा **लक्ष्मी** (1924 ई.)। इनमें से पहले दो उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं और तीन सामाजिक संदर्भों से जुड़े हुए हैं। **वीरांगना** लेखक का सबसे पहला उपन्यास तो है ही, उनका सर्वप्रथम ग्रंथ भी है, जिसका प्रकाशन उन्होंने फतेहपुर में बाईस वर्ष की अवस्था में स्वयं किया था। अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए वे भूमिका में लिखते हैं—"कर्मवीरों का आत्म-त्याग किसी देश की उन्नति का प्रधान कारण है। परन्तु कर्मवीरता और आत्म-विसर्जन का गुण उनमें स्वयं तथा सीखने से उतना नहीं हो सकता, जितना बालकपन में विदुषी माता की थोड़ी शिक्षा से। यह बात कपोल-कल्पित नहीं है, बल्कि इतिहासों से अच्छी तरह प्रमाणित है। इससे सिद्ध हुआ कि बच्चों को जन्म से ही कर्मवीर और सहनशील बनाने व देश-सुधार करने का साधन-सूत्र माता के हाथ है। अतएव, माता का विदुषी होना आवश्यक है। वीर और वीरांगनाओं के कर्त्तव्य-पालन का इतिहास स्त्री-समाज के लिए कितना हितकारी है, इसका अनुमान विचारशील जन कर चुके हैं, करते हैं और करेंगे। यही सोचकर मैंने यह वीरांगना नामक पुस्तक लिखी है।" तीन बातें लेखक के इस वाक्य से स्पष्ट हैं। एक —देश का उद्धार उसके नागरिकों के साहस, त्याग और बलिदान के बिना संभव नहीं है, दो—देशभक्ति और सेवा का पाठ माताएँ ही सिखा सकती हैं और तीन—माताओं का शिक्षित और विदुषी होना आवश्यक है। त्रिपाठी जी के उपन्यासों और कुछ जीवन-चरित्रों के प्रणयन के मूल में उनका उक्त सदुद्देश्य ही प्रेरक-बिंदु के रूप में विद्यमान रहा है।

वीरांगना की नायिका राजस्थान की वीर क्षत्राणी रानी पद्मिनी है और 'वीरबाला' में गुजरात की वीर राजपूत कन्या सरदारबाई का चरित्र रूपायित हुआ है। त्रिपाठी जी इन दोनों ऐतिहासिक कथानकों के माध्यम से देशभक्ति, स्वातंत्र्य-प्रेम, जाति-गौरव और आत्म-सम्मान के प्रशस्त मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हैं। सन् 1275 ई. में जब बादशाह अलाउद्दीन चित्तौड़ पर आक्रमण करता है तो महाराजा भीमसिंह जी के रूप में लेखक का देशप्रेमी और स्वातंत्र्य-चिंतक का

ओजस्वी रूप प्रकट होता है। राजसभा के वीरों को संबोधित करते हुए वीर नरेश कहते हैं—"बहादुरों! आज माता के ऋण से उऋण होने का दिन है। माता हम सबकी कौन है? यही जन्म भूमि, जिसकी गोद में पलकर हम इतने बड़े हुए हैं। ···आज उसी पर विपत्ति आनेवाली है। आज वही माता शत्रुओं के पैरों से कुचली जाएगी। आज उसकी छाती पर अधर्मियों का कुठार चलनेवाला है। इसलिए ऐसे समय में जन्मभूमि माता की रक्षा करना हम सबका परम धर्म है। समझो और याद रक्खो कि जिस जाति के लोग अपनी जन्मभूमि की रक्षा नहीं कर सकते, वे कभी सुखी नहीं रह सकते। यदि हम सब सचेत न होंगे, तो माता को दिये हुए सुखों का अधिकार हमसे छिन जायेगा। हमारी स्वतन्त्रता नष्ट हो जायगी। हम पराधीन हो जायँगे। और हमारे पैरों में परतंत्रता की बेड़ियाँ सदा के लिए पड़ जायँगी। हमारा अधिकार हमारे जीते जी दूसरा छीन ले, ऐसे जीने पर धिक्कार!" (छठा दृश्य, पृ. 18-19)। ऐसे एक नहीं, अनेक स्थल हैं, जहाँ स्वदेशाभिमानी और मुक्तिकामी त्रिपाठी जी ने अपना हृदय निकालकर रख दिया है। त्रिपाठी जी के सामने उनके पराधीन देश का चित्र था। वे अपने चरित्रों के माध्यम से देश के युवकों को संघर्षों से जूझने के लिए प्रेरित कर रहे थे। उपन्यास के आठवें दृश्य में वीर गोरा के संवादों के माध्यम से वे कहते हैं कि आजादी का मार्ग सुगम नहीं है, देशभक्तों को पग-पग पर विपत्तियों को हँसते हुए गले लगाना पड़ेगा और भीषण से भीषण कठिनाइयों से साहसपूर्वक जूझना पड़ेगा। "जो कायर हैं, जिनको जातीयता का ज्ञान नहीं है; जिनमें स्वाभिमान, स्वावलंबन, स्वार्थ-त्याग, स्वदेश तथा स्वजाति से प्रेम नहीं है, उनके लिए तृण-सा दुख पहाड़ जान पड़ता है और वे ही जीते-जी नरक में पड़े हुए हैं।" (पृ. 49-50)

वीरांगना उपन्यास में त्रिपाठी जी की भाषा का प्रवाह देखने योग्य है। हृदय को झकझोर देनेवाले शब्दों के चयन से उन्होंने ओज की उपासना की है। पात्रोचित भाषा लिखने में त्रिपाठी जी सिद्धहस्त थे। घटनाओं का जीवंत चित्रण उनकी विशेषता है। उदाहरण के लिए जौहर का दृश्य देखें—"किसी की बहिन, किसी की बेटी, किसी की माँ, किसी की स्त्री; एक-एक करके उस जलती हुई गुफा में जा घुसीं और जलकर अंगारे के रूप में चमकने लगीं। सबसे पीछे महारानी पद्मिनी चलीं। राजपूतों के कलेजे में एक तीर-सी चुभ गयी।···पद्मिनी गुफा के द्वार तक पहुँची। वहाँ उसके लिए चिता अलग बनी हुई थी। सती शिरोमणि पद्मिनी का तेज अग्नि के तेज से कहीं अधिक था। इसलिए चिता पर बैठते ही अग्नि ने पहले आकर उसके पैर को चूम लिया। सारे शरीर में लपटें लिपट गयीं। पद्मिनी सदा के लिए अन्तर्धान हो गयी।" (पृ. 69)

त्रिपाठी जी ने अपने उपन्यासों की रचना उन दिनों की, जब वे भाषा और शैली की दृष्टि से उतने सुघड़-सुनिश्चित नहीं थे। वह काल उपन्यासों के विकास

के प्रथम और द्वितीय चरणों का संधिकाल था। 'वीरांगना' में कुल तीस दृश्यों में कथा दर्शायी गयी तो 'वीरबाला' में कुल पन्द्रह 'झलकों' में चित्रांकन हुआ है। एक विशेष प्रकार की नाटकीयता का इन उपन्यासों में सहारा लिया गया है। एक-एक दृश्य का अवलोकन कराता-सा चलता है लेखक। लेखक ने इन दोनों ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली का ही अनुसरण किया है। पद्मिनी की भाँति सरदारबाई भी वीरता और बलिदान की प्रतिमूर्ति थी। उसका तेजस्वी चरित्र देश की बालिकाओं और युवतियों को शिक्षा प्रदान करे, यही लेखक का उद्देश्य है।

मारवाड़ी और पिशाचिनी एक सामाजिक उपन्यास है, जिसका कथानक चूरु (मारवाड़) नगर के एक धनी परिवार पर आधृत है। इसमें सरस्वती नाम की एक वणिक कन्या की कहानी कही गयी है। घर में सौतेली माता का दुर्व्यवहार और ससुराल में अयोग्य दुर्व्यसनी पति का दुराचार सब कुछ धैर्य और साहस के साथ सहती है सरस्वती। अन्त में वह अपने पति को भी रास्ते पर लाती है। इस प्रकार सरस्वती के आदर्श चरित्र को चित्रित करना और उसकी सौतेली माता यमुना के पिशाचिनी रूप को प्रकट करना ही लेखक का उद्देश्य है। यह भी लेखक की आरम्भिक औपन्यासिक रचना है, अतः कला की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व नहीं है। 'सुभद्रा' और 'लक्ष्मी' उपन्यास भी पारिवारिक कहानियाँ हैं, जिनमें नायिकाओं को सुशील और गुणसम्पन्न महिलाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है। लक्ष्मी की अपेक्षा सुभद्रा का कथानक काफ़ी विस्तृत और घटना-प्रधान है, अतः पात्रों का चरित्र भी खुलकर प्रकट हुआ है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि औपन्यासिक कला की दृष्टि से इनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। परन्तु आदर्श का निर्वाह तो इनमें हुआ ही है, जो लेखक को अभीष्ट था।

चरित साहित्य

पं. रामनरेश त्रिपाठी मानव-जीवन के कुशल चितेरे थे। उन्होंने ऐतिहासिक और समकालीन महापुरुषों की प्रेरणादायी जीवनियों को अपनी सरल, गतिशील, प्रभावी भाषा-शैली से रूपायित किया। देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत होने के कारण उनके द्वारा वर्णित जीवन-चरित अत्यन्त भव्य और उत्साहवर्धक बन पड़े हैं। उनके द्वारा लिखित जीवनियाँ हैं : दमयन्ती चरित्र (1914 ई.), श्रीमान् सेठ रामदयालु जी नेवटिया का जीवन चरित (1914 ई.), पृथ्वीराज चौहान (1917 ई.), पद्मावती (1917 ई.), गाँधी जी कौन हैं (1920 ई.) आल्हा रहस्य (1921 ई.), सेठ जमनालाल बजाज (1926 ई.) तथा तीस दिन मालवीय जी के साथ (1942 ई.)। त्रिपाठी जी ने 'आत्मकथा' भी लिखना आरम्भ किया था, पर वे उसे पूरा नहीं कर पाये। कुछ अंश 'मेरा कवित्व' और 'गाँधी जी के संस्मरण' शीर्षक से सम्मेलन पत्रिका (श्रद्धांजलि-अंक चैत्र मार्गशीर्ष 1884, शक)

में प्रकाशित भी हुए हैं। 'ब्रह्मचर्यव्रत और गाँधी जी' भी उनका एक आत्म-कथात्मक लेख है, जिसे डॉ. राममूर्त्ति शर्मा ने अपने ग्रंथ 'रामनरेश त्रिपाठी और उनका साहित्य' में सर्वप्रथम प्रकाशित किया।

समाज और देश पर जो अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ जाते हैं और अपने त्यागपूर्ण संघर्षमय जीवन के कार्यकलापों से आनेवाली पीढ़ियों का मार्ग-दर्शन करते हैं, वे इतिहास-पुरुष कहलाते हैं। भारत के सुनहले अतीत के पृष्ठों से त्रिपाठी जी ने कुछ ऐसे ही रत्न ढूँढ निकाले। दमयन्ती, पृथ्वीराज चौहान, महारानी पद्मिनी और आल्हा-ऊदल ऐसे ही तेजस्वी चरित्र हैं, जिनके जीवन पर उन्होंने प्रकाश डाला है। समकालीन व्यक्तियों में उन्होंने श्रेष्ठि-कवि रामदयालु नेवटिया, महात्मा गाँधी, सेठ जमनालाल बजाज और महामना मदनमोहन मालवीय के जीवन की प्रमुख घटनाओं को चित्रित किया है। जीवन-चरित्र लिखने की परम्परा हिन्दी में भारतेंदु-युग से ही आरम्भ हो जाती है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र, देवी प्रसाद मुंसिफ़, कार्तिक प्रसाद खत्री, राधाकृष्णदास, प्रताप नारायण मिश्र प्रभृति जीवनीकारों का अनुकरण करते हुए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके युगीन लेखकों, जिनमें रामनरेश त्रिपाठी, रामविलास सारदा, माधव प्रसाद मिश्र, पारसनाथ त्रिपाठी, देवी प्रसाद, सिद्धेश्वर वर्मा, देवेन्द्र प्रसाद जैन, ओंकारनाथ वाजपेयी आदि उल्लेख्य हैं, ने जीवनी-साहित्य की अपूर्व श्री-वृद्धि की। द्विवेदी-युग में मुख्यतया इतिहास-प्रसिद्ध चरित्रों, राष्ट्रीयता के पोषक समकालीन महापुरुषों और विदेशों के प्रेरणाप्रद महामानवों पर लिखा गया। त्रिपाठी जी अपनी युवावस्था से ही एक आदर्श अध्यापक, कर्मठ समाज-सुधारक और क्रांतिकारी लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। वे एक संदेशक और प्रेरक साहित्यकार थे। अतः उन्होंने जीवनी-लेखन में विशेष रस लिया और बड़े मनो-योग के साथ तेजस्वी चरित्रों को अपनी लेखनी के माध्यम से चित्रित किया।

द्यूत-वृत्ति मनुष्य को कितना गिरा देती है, इसे स्पष्ट करने के लिए उन्होंने नल का चरित्र उठाया। दमयन्ती के आदर्श जीवन की झाँकी दिखाकर उन्होंने स्त्री-समुदाय को शिक्षा दी। 'पृथ्वीराज चौहान' की जीवनी लिखने का उनका उद्देश्य यह बताना था कि अशिक्षा, विलासिता, आपसी वैमत्य और फूट के कारण ही किसी देश-जाति को अपनी स्वतन्त्रता से हाथ धोना पड़ता है। भूमिका में इस ओर संकेत भी मिलता है—"उस समय के क्षत्रिय राजा, जो प्रायः अशिक्षित थे, कन्या के लिए कलह मोल लेते फिरते थे। इच्छन कुमारी के लिए पृथ्वीराज का भीमदेव से और संयोगिता के लिए जयचन्द ऐसे प्रबल प्रतापी राजा से बैर हो गया।···समाज में राजाओं के बहु विवाह रोकने का कोई नियम नहीं था। उनकी काम-तृष्णा ने भारत का नाश कर डाला।" आगे वे लिखते हैं कि यदि उस समय भारत के राजा आपस में मिलकर रहते, स्त्रियों के लिए आपस में न लड़ मरते तो

भारत की स्वतन्त्रता कभी नष्ट नहीं होती। यह ऐक्य प्रतिपादक ऐतिहासिक जीवन-चरित उन्होंने चन्द बरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' के आधार पर लिखा। 'पद्मावती' वस्तुतः उनकी प्रथम प्रकाशित कृति 'वीरांगना' (1911 ई.) का पुर्नप्रकाशन है। चित्तौड़ की महारानी पद्मावती के औपन्यासिक ढंग पर लिखे इस जीवन-चरित्र का आरम्भ त्रिपाठी जी ने कलकत्ते में किया था और अपनी बीमारी की अवस्था में इसकी पूर्णता उन्होंने फतेहपुर में की थी। लेखक की सर्वप्रथम कृति होने का गौरव इसे ही प्राप्त है। इसमें वीर क्षत्राणी के तेजस्वी रूप को अत्यन्त भव्यता के साथ दर्शाया गया है। ऐतिहासिक जीवनियों के इस क्रम में त्रिपाठी जी ने महावीर आल्हा के जीवन की प्रमुख घटनाओं को आधार बनाकर 'आल्हा-रहस्य' लिखा।

आल्हा-ऊदल दो भाई थे। साहस में उनका कोई उत्तर नहीं था। आल्हा वीर-शिरोमणि था। उसकी वीरता का जादू इतना प्रभावी था कि युद्धों का वर्णन करनेवाले छन्द का नाम ही आल्हा पड़ गया। ऐसे तेजोमय व्यक्ति को आधार बनाकर त्रिपाठी जी ने जो चरित्र लिखा, वह हमारे प्रेरक राष्ट्रीय साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय ही बन गया है।

सेठ रामदयालु नेवटिया (1825-1913 ई.) अपने समय के परम विद्वान् व्यक्ति थे। वे भारतेंदुकालीन साहित्य-प्रेमी व्यवसायी थे। उनके आत्मचरित्र द्वारा त्रिपाठी जी ने उनके साहित्यकार के रूप को उपस्थित किया है। प्रेमांकुर, बलभद्रविजय, लक्ष्मण-मंगल आदि काव्य-ग्रन्थों के प्रणेता नेवटिया जी का भारतेंदु जी और राजा शिवप्रसाद जी के साथ नियमित पत्राचार चला करता था। वे अनन्य पुस्तक-प्रेमी और स्वाध्यायशील व्यक्ति थे। उनके पुस्तक-प्रेम की प्रशंसा करते हुए जीवनीकार लिखते हैं—'आपका पुस्तकालय भारतवर्ष की नवीन-प्राचीन सब हिन्दी की पुस्तकों से सुसज्जित है। पुस्तकों का ऐसा संग्रह मैंने कहीं नहीं देखा।' उनके द्वारा रचित एक छन्द बानगी रूप में द्रष्टव्य है :

बीत रही सब आयु तदपि बीती नहीं आशा।
अजहु चहूँ सुख भोग रोग भय बड़ा तमाशा।
शिथिल हो गयी देह वात पित कफ ने घेरा।
श्वेत केश संदेश शयन का आया तेरा।
शक्तिहीन इन्द्री भई, भक्ति लेश नहीं तनिक मन।
तृष्णा को तज रे अधम, भजत क्यों न राधा रमन।। (पृ. 12)

'कविता-कौमुदी' (दूसरा भाग, 1920 ई.) द्वारा त्रिपाठी जी ने उनका परिचय हिन्दी-जगत को दिया। वे 'कृष्णदास' के उपनाम से भी रचनाएँ करते थे।

सेठ जमनालाल बजाज के व्यक्तिगत, सामाजिक और सार्वजनिक जीवन के अनेक पहलू त्रिपाठी जी ने उनकी जीवनी द्वारा उभारे हैं। आदर्श जीवन के धनी

देशभक्त जमनालाल बजाज गाँधी जी के परम प्रिय पात्र थे। उनकी विनम्रता और गाँधी जी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा का प्रमाण इस बात से मिलता है कि उन्होंने लेखक पर यह शर्त लगा दी थी कि जीवनी का प्रकाशन तभी हो जब पूज्य बापू की स्वीकृति मिल जाय। सम्मति प्राप्त करने के लिए लेखक को स्वयं साबरमती जाना पड़ा था।

महात्मा गाँधी के आदर्श जीवन का परिचय देने के लिए त्रिपाठी जी ने सन् 1920 ई. में 'गाँधी जी कौन हैं' शीर्षक से एक पुस्तिका तैयार की। इसमें उनके जन्म से लेकर असहयोग आन्दोलन के दिनों तक की चर्चा है। 155 पृष्ठों में मुद्रित पुस्तक में समस्त जीवनी को पन्द्रह अध्यायों में गूँथा गया है: गाँधी जी कौन हैं, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, हिन्द स्वराज्य, सत्याग्रहाश्रम-साबरमती, चम्पारन की जाँच, अहमदाबाद की हड़ताल, खेड़ाकांड, हिन्दी प्रचार, सुधार स्कीम और सरकार की मदद, रौलट एक्ट, सत्याग्रह, पंजाब का हत्याकांड, असहयोग, गाँधी जी के दिल की बातें और सत्याग्रह-गीत। गाँधी जी के जीवन-सन्देश को जीवनीकार ने मंगलाचरण में मंत्रवत् रख दिया है—

निर्भय मन रख, निर्भय तन रख, निर्भय दृढ़ निश्चय।
सत्यकथन कर, कष्ट सहन कर, रख जीवन निर्भय।
सत्य कमर कस, हो मत परवश, कर प्रयत्न निर्भय।
आलस मत कर, धीरज उर, धर कर न कभी संशय॥

वर्तमान शताब्दी के दूसरे दशक के उत्तरार्ध में गाँधीजी भारत के राजनीतिक क्षितिज पर एक देदीप्यमान नक्षत्र की तरह उदित हो चुके थे। उनका वर्चस्वी प्रभाव अलौकिक सौरभ की तरह भारत के गाँव-गाँव में फैल रहा था। उस समय श्रद्धा और उत्सुकता से लोग अपने प्रिय नेता के बारे में जानना चाहते थे। एक देहाती भाई द्वारा ऐसी ही जिज्ञासा उठाने पर त्रिपाठी जी के दिल में महात्मा जी का एक छोटा-सा जीवन-चरित लिखने की बात उठी थी। उन्होंने स्वयं देखा था कि किस प्रकार बापू अपनी अलौकिक छवि से सारे देश को अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे। भूमिका में वे लिखते हैं—"महात्मा गाँधी इस समय सारे मुल्क के दिलों के केन्द्र हो रहे हैं। वे हिन्दुस्तान की आत्मा होकर बोल रहे हैं। सब उन्हें देखने को तरस रहे हैं, सब उनकी बातें सुनने को छटपटा रहे हैं, सब उनकी बतायी हुई राह पर चलने को कमर बाँध रहे हैं। 'हिन्द-स्वराज्य और असहयोग' प्रकरणों को लेखक ने सविस्तार लिखा है। अन्त में सत्याग्रह-गीत में सत्याग्रही अपने दिव्य रूप की झलक दिखाते हुए कहता है: "काट लो सिर, दर्द सिर का लो मिटा, भार कंधे का हमारा भी हटे। हूँ दिये की लौ, इसे मत भूलना, फिर उजाला और भी हो जायगा।"

गाँधी जी ने समस्त भारत में ऐसे करोड़ों दीपक प्रज्ज्वलित कर दिये थे।

'तीस दिन मालवीय जी के साथ' हिन्दी में अनूठी संस्मरणात्मक चरित-पुस्तक है। इसका लेखन सेठ बिड़ला जी के आग्रह पर हुआ। 10 जुलाई 1940 को उक्त कार्य-संपादन के लिए त्रिपाठी जी को तार द्वारा काशी बुलाया गया था। 11 जुलाई की दुपहरी को त्रिपाठी जी बिड़ला जी से मिले। पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए लेखक बताते हैं—'बिड़ला जी ने अपनी यह इच्छा प्रकट की कि मैं पूज्य मालवीय जी महाराज के पास कुछ दिन ठहर कर उनके जीवन के कुछ संस्मरण, जो उनसे बातचीत करने में मिले, लिख दूँ।' मालवीय जी से त्रिपाठी जी का पूर्व परिचय था। वे 'पथिक' और ग्राम-गीतों के प्रशसक रह चुके थे। त्रिपाठी जी 6 अगस्त 1940 को उनकी सेवा में पहुँचे और चरितांकन हेतु उनके संस्मरण जुटाने लगे। महामना मदन मोहन मालवीय देव-पुरुष थे। त्रिपाठी जी के लिए यदि गाँधीजी सूर्य थे तो मालवीय जी चन्द्र। त्रिपाठी जी ने अत्यन्त श्रद्धा से अभिभूत होकर पूज्य मालवीय जी के संसर्ग का लाभ उठाया। उन्होंने अनुभव किया—"जो व्यक्ति लगातार साठ वर्ष तक, एक क्षण के लिए भी अन्यमनस्क हुए बिना, अपनी संपूर्ण शक्ति से अपने विस्तृत देश और विशाल जाति का हृदय बनकर उनकी धमनियों में बल की अजस्र धारा फेंकता रहा है, जो राह में पड़े हुए अनाथ भिक्षुक से लेकर राजा-महाराजाओं, सन्तों-महंतों और वाइसरायों और बादशाह तक अनेक रंग के फूलों की माला में एक डोरे की तरह, निरन्तर प्रवेश करता जा रहा है; जिसने अपनी मधुर वाणी से लाखों क्या, करोड़ों मनुष्यों के मर्मस्थल को स्पर्श किया है और जिसने यश की ओर एक क्षण के लिए भी गर्दन नहीं घुमायी है, उसके जीवन के संस्मरण क्या एक महीने में लिखे जाकर ओरा सकते हैं? असंभव है। ऐसे व्यापक पुरुष का जीवन-चरित कागज पर लिखा भी तो नहीं जा सकता। आगे किसी दिन सुख-समृद्धि सम्पन्न हिन्दू जाति और स्वतन्त्र भारत ही उसका जीवन चरित होगा।" ऐसा विलक्षण व्यक्तित्व था मालवीय जी का, जिसका अपूर्व रूपायन त्रिपाठी जी की सधी हुई लेखनी द्वारा सम्पन्न हुआ। मालवीय जी की विद्वत्ता, निरभिमानता, सदाशयता, स्वातंत्र्य-प्रियता, सत्यता, परोपकारिता, सहिष्णुता और सबसे बढ़कर उनकी मनुष्यता की अवगति देने वाले प्रसंगों को त्रिपाठी जी ने बड़े मनोयोग और हृदयस्पर्शी ढंग से चित्रित किया है। मालवीय जी का जीवन समाज और देश को समर्पित था। वे जागरण के उद्बोधक साहित्य के निर्माण के लिए रचनाकारों को प्रेरित करते थे। 1 सितम्बर 1940 को उन्होंने त्रिपाठी जी से कहा था कि वे ऐसी कविताएँ लिखें 'जो देश के युवकों में प्राण फूंक दें, जैसे गुरु गोविंदसिंह ने अपने शिष्यों में आग सुलगा कर दी थी। छोटे-छोटे पद्य लिखिये जो गाँव-गाँव और कंठ-कंठ में पहुँच जाएँ, जिन्हें पढ़कर और सुनकर लोग वीर बनें, साहसी और भारतवर्ष के सच्चे पुत्र कहलाएँ।'

मालवीय जी के बहुआयामी व्यक्तित्व को रेखांकित करनेवाली इन पंक्तियों

को देखें—"कहीं वे हिन्दू समाज में फैली हुई बुराइयों को निर्मूल करने में लगे दिखायी पड़ रहे हैं; कहीं बच्चों, युवकों, वृद्धों और स्त्रियों के लिए स्वास्थ्य, सदाचार, धन-वृद्धि और समाज-सुधार की असंख्य स्कीमें बनाते हुए मिलेंगे, कहीं युवकों को उनके पूर्वजों की वीर गाथाएँ सुना-सुनाकर उन्हें देश पर बलिदान हो जाने को उत्साहित करते मिलेंगे, कहीं सनातन धर्म के गूढ़ तत्त्वों का विश्लेषण कर हिन्दुओं को कल्याण के पथ पर ले जाते हुए मिलेंगे; कहीं ब्रह्मचर्य-पालन की महिमा का गान कर रहे हैं तो कहीं अखाड़े खुलवा रहे हैं। कहीं देश को स्वतन्त्र बनाने के लिए कौंसिल की बैठकों में तीन-तीन चार-चार घंटे खड़े होकर सरकार से लड़ते हुए मिलेंगे तो कहीं पीड़ितों की सभा में धर्म की व्याख्या करते हुए, कभी गोरक्षा के लिए धनिकों और सेठों को उत्साहित करते हुए मिलेंगे तो कभी कांग्रेस के मंच पर खड़े होकर निर्भीकता से भारत-वर्ष के स्वराज्य का पक्ष-समर्थन करते हुए मिलेंगे और कभी हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए झोली लटकाये हुए घर-घर चंदा माँगते हुए मिलेंगे।" जीवन का प्रत्येक क्षण देश पर अर्पित कर देनेवाले महापुरुष के सत्कार्यों की यह चित्रपटी रामनरेश त्रिपाठी जैसे शब्दों के कुशल और सफल कलाकार ही तैयार कर सकते थे। यह पुस्तक चरितनायक और चरितकार दोनों की कीर्ति का आधार बनी।

नाटक साहित्य

त्रिपाठी जी ने जिन दिनों नाटक लिखना आरम्भ किया, उन दिनों साहित्य की यह विधा पर्याप्त विकास प्राप्त कर चुकी थी। भारतेंदु-काल (1868-1900 ई.) में अनेक नाटकों की रचना हुई। भारतेंदु हरिश्चन्द्र तो आधुनिक हिन्दी-नाटकों के जन्मदाता ही थे। उन्होंने और उनके समकालीन नाटककारों ने पौराणिक, ऐतिहासिक, रोमानी और प्रहसनात्मक नाटकों की रचना करके नाटक विधा का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। द्विवेदी काल (1900-1918 ई.) में भी नाटक-लेखन का क्रम जारी रहा। प्रसाद-युग (1919-1938 ई.) को नाटक-साहित्य के कलात्मक उत्कर्ष का युग माना जा सकता है। त्रिपाठी जी ने नाटकों का प्रणयन इसी काल में आरम्भ किया। यद्यपि उनके नाटक कला की दृष्टि से सुघड़ और विकसित नहीं हैं फिर भी हिन्दी के चतुर्दिक् विकास की दिशा में नाटक-लेखन के उनके प्रयास का अपना महत्त्व है। उनकी नाट्य-कृतियाँ हैं—जयन्त (1934 ई.), प्रेमलोक (1934 ई.), बफाती चाचा (1939 ई.), अजनबी (1946 ई.), पैसा-परमेश्वर (1952 ई.) बा और बापू (1953 ई.) और कन्या का तपोवन (1954 ई.)।

नाटकों की रचना का शुभारम्भ त्रिपाठी जी ने दक्षिण भारत के कुछ मित्रों के आग्रह पर किया था। त्रिपाठी जी ने अब तक इस दिशा में कोई प्रयास नहीं

किया था। वे जानते थे कि नाटक लिखना सहज काम नहीं है, बाह्य और अंतर-जगत् दोनों का जिसे अच्छा अनुभव हो और अनुभव को प्रकट करने की कला में भी जो निपुण हो, वही नाटक लिखने में सफल हो सकता है। परन्तु हिन्दी की बहुविध सेवा करने की भावना से प्रेरित होकर और अपने मित्रों के इस उलाहना का उत्तर देने के लिए कि हिन्दी में नाटकों का अभाव है, वे नाटक-रचना की ओर भी प्रवृत्त हुए। नाटकों की कथावस्तु उन्होंने अपने जाने-पहचाने समाज से बटोरी। पौराणिक अथवा इतिहास के पात्रों का सहारा लेकर नाटक लिखना उन्हें इष्ट नहीं था। 'बा और बापू' की भूमिका में वे लिखते हैं—"ऐतिहासिक पुरुषों को खासकर जिनपर हमारे समाज की धार्मिक श्रद्धा है, कविता, कहानी या नाटक का विषय बनाना और उन पर अपनी कल्पना की कलई चढ़ाना मुझे कभी प्रिय नहीं था। मैं इसे साहित्यिक अपराध-सा समझता हूँ। भिन्न-भिन्न विचारों और आदर्शों के कवियों और लेखकों के मस्तिष्क से नाना रूपों में निकलने के कारण उनकी ऐतिहासिकता नष्ट हो जाती है और मूल कथाओं के लिए समाज में जो निष्ठा बन चुकी होती है, वह छिन्न-भिन्न हो जाती है। इससे ऐतिहासिक पुरुषों के आदर्श चरित्र का प्रभाव धीरे-धीरे क्षीण हो जाता है। मैंने अपने खण्ड काव्यों, कहानियों और नाटकों में सदा वर्तमान को आधार बनाया है। वर्तमान इतना विशाल हो गया है कि उसे भूत की आवश्यकता बहुत कम रह गयी है। और वर्तमान पर ही भविष्य का भवन खड़ा किया जायगा।" उनके सभी नाटकों का सम्बन्ध वर्तमान सामाजिक परिवेश से है।

जयन्त नाटक उन्होंने 11 जनवरी 1934 को लिखना आरम्भ किया और छठे दिन अर्थात् 16 जनवरी 1934 को पूरा कर डाला। इस नाटक का मुख्य सन्देश सेवा-भाव है। नाटक का नामकरण रचनाकार ने नायक 'जयन्त' के नाम पर किया है। यह सोनपुर के एक निर्धन सद्गृहस्थ हरिबल्लभ के परिवार की मार्मिक कहानी है। अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त जयन्त और उसकी बहिन कुसुम किस प्रकार विपत्तियों और चुनौतियों का सामना करते हुए समाज के प्रतिष्ठित अंगों के रूप में उभर कर आते हैं, इसे लेखक ने अनेक प्रसंगों की रचना करके दिखाया है। कुसुम आश्रम में रहकर अपने स्नेहशील आचरण से सबकी प्रिय बन जाती है और सोनपुर की राजकुमारी पद्मावती की सहेली बनकर राज-प्रासाद में प्रवेश करती है। जयन्त भी पढ़-लिखकर समाज-सेवा का व्रत ले लेता है। वह राज्य के दुष्ट मन्त्री के षड्यन्त्र को विफल करके राजकुमारी पद्मावती की सहायता करता है। अन्त में उसका विवाह राजकुमारी से हो जाता है और बहिन कुसुम भी उसे मिल जाती है। देवदत्त के अभिभावकत्व में शिक्षित-दीक्षित होनेवाला जयन्त मानव-सेवा के महनीय पथ पर यह सोच-विचार कर आगे बढ़ता है कि 'मनुष्य तो दूसरों की सेवाओं का एक प्रत्यक्ष परिणाम है। किसी ने जन्म

दिया, किसी ने पालन-पोषण किया, किसी ने वस्त्र बुन दिये, इस प्रकार की बहुतों की सेवाएँ इस शरीर के निर्माण में सफल हुई हैं। इस पर तो समस्त मानव-जाति का ऋण है। यदि मैं इस शरीर की सारी शक्तियों को मानव-जाति को फिर लौटा दूं, तभी मैं ईश्वर और अपनी आत्मा के सामने सच्चा प्रमाणित होऊँगा।' इस नाटक के प्रणयन के समय भी त्रिपाठी जी की आँखों के सामने उनका पराधीन देश और उसके दीनहीन असहाय लोग उपस्थित थे। 'जयन्त' के चरित्र में एक सच्चे जन-सेवक के दर्शन हमें होते हैं, जो केवल समाज-सेवा से ही सन्तुष्ट नहीं हैं अपितु परतन्त्र देश की मुक्ति के लिए भी चितारत हैं। उसकी चिन्ता विश्व के समस्त गुलाम देशों के प्रति भी है। अन्त में जयन्त के इस गीत में नाटककार का मन्तव्य गुंजरित होता है कि—'आओ, आओ मधुर वसन्त, मेरे विश्व-सदन में आओ।···पराधीन देशों में आओ, नूतन खेल दिखाते। स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर प्राण समूह चढ़ाते। मेरे विश्व-सदन में आओ।' कवि की यह विश्व-मानवता की भावना उसकी उदार देशभक्ति की परिचायक है।

'प्रेमलोक' नाटक की रचना भी त्रिपाठी, ने 1934 ई. में ही की। यह नाटक वस्तुतः कवि की एक काल्पनिक कहानी 'कवि का स्वप्न' का विकसित रूप है। 1954 ई. में त्रिपाठी जी ने इसे कुछ और परिवर्तित-संशोधित कर 'कन्या का तपोवन' शीर्षक से प्रकाशित किया था। कहानी में चन्द्रलोक की किरण पृथ्वीलोक में विशुद्ध प्रेम की खोज में आती है, परन्तु यहाँ उसे ऐसे प्रेम से साक्षात्कार होता है, जिसमें किसी प्रकार की सम्वेदना अथवा रागात्मकता नहीं होती। हार कर वह पुनः चन्द्रलोक में लौट जाती है। 'प्रेमलोक' की नायिका भी किरण ही है जो प्रेम और गार्हस्थ्य-सुख की चाह में संसार में रहती है और अन्त में प्रेम की निःसारता का अनुभव प्राप्त करती है। परिवार के विरोधी प्रकृति वाले सदस्यों के बीच उसका दम घुटने लगता है। वह यह अनुभव करती है कि प्रेम वस्तुतः दुखों को समझने, सहने और उनके निवारण की चेष्टा में है। अन्त में वह विश्व-व्यापी प्रेम का रहस्य समझ लेती है और घोषित करती है—"जिसे मैं प्रेम समझती थी, वास्तव में वह मोह था, चन्द्रदेव ! मनुष्य-समाज में व्यापक दुःखों के भीतर प्रेम नाम का पदार्थ छिपा हुआ मुझे मिला, जैसे गहरी खान में हीरा! कोई व्यक्ति दुःखों की तहों को हटाता हुआ मनुष्य-समाज में दूर तक चला जाय, तब वह प्रेम को पा सकता है।" इस प्रकार पारिवारिक वातावरण में विकसित कथानक में लेखक ने विश्व-प्रेम और मानव-प्रेम का आदर्श प्रतिपादित किया है।

सन् 1954 में जब लेखक ने 'कन्या का तपोवन' (ससुराल) नामक नाटक की रचना की, तो मूल कथावस्तु उन्होंने 'प्रेम लोक' से ही ली और उसे पारिवारिक तथा सामाजिक सन्दर्भों से पूर्णरूपेण जोड़कर एक उद्देश्यपूर्ण नाटक के रूप में परिणत कर दिया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद परिवारों में बढ़ते हुए तनाव और

घुटन का सर्वाधिक प्रभाव पिता के घर से पति के घर आयी हुई कन्याओं पर पड़ता था। दहेज का विकराल दानव भी अपना शिकंजा कसता जा रहा था। समाज और परिवार के अंतरंग की इस अस्त-व्यस्त स्थिति को त्रिपाठी जी ने देखा था। इस नाटक के कथानक का सम्बन्ध दो परिवारों से है। किरण का स्थान यहाँ इन्दुमती ले लेती है। वह सतवन्ती नारी है। उसकी धीरता और सहिष्णुता प्रत्येक बहू के लिए अनुकरणीय है। इस नाटक में लीलाधर और लच्छो जैसे पात्रों के माध्यम से लेखक ने धन-लोलुपता के दुष्परिणाम भी बताये हैं। लेखक ने शादी-ब्याहों में बढ़ने वाले लेन-देन पर इन्दुमती के शब्दों में चिन्ता व्यक्त की है—'अब दृश्य यह है कि एक ओर कन्या का पिता कन्या को पीछे लेकर खड़ा है और दूसरी ओर वर का पिता वर के आगे खड़ा है। दोनों पिता सौदा कर रहे हैं, वर और कन्या को बोलने का भी अधिकार नहीं है। यह विवाह की प्रथा का सबसे बीभत्स रूप है।' (अंक 3, दृश्य 13) आज तीन दशक और गुज़र गये हैं। शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार के बाद भी सभ्य समाज से वैवाहिक व्यापार का यह पाप कहाँ मिटा है ? त्रिपाठी जी के लेखन की प्रासंगिकता आज भी धूमिल नहीं हुई है।

'बफाती चाचा' लेखक का सर्वाधिक सशक्त लोकप्रिय नाटक है जिसकी रचना उन्होंने एक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता मित्र के आग्रह पर अपने कथा-संग्रह 'तरकस' में प्रकाशित 'बफाती चाचा' नामक प्रसिद्ध कहानी के आधार पर 1939 ई. में की थी। इसका मुख्य सन्देश साम्प्रदायिक सद्भावना, सहिष्णुता और एकता है। इसमें गाँवों में रहने वाले हिन्दू-मुसलमानों के उस समय का चित्र मिलता है, जब किसी प्रकार की कोई साम्प्रदायिक हठधर्मिता नहीं थी, कोई तनाव नहीं था, वैमत्य और फूट के विषैले नाग गाँवों तक पहुँचे नहीं थे। यह त्रिपाठी जी का तीसरा त्रिअंकी नाटक है, जिसका सृजन राष्ट्रीय पृष्ठभूमि में हुआ है। नाटक के मुख्य पात्र एक जुलाहे बफाती मियाँ हैं, जिन्हें सारा गाँव बड़े प्यार से बफाती चाचा के नाम से पुकारता है। रतन पांडे उनके पड़ौसी हैं। दोनों खेतीबारी का काम करते हैं। गाँव में आपसी प्रेम और भाईचारे का सुखद वातावरण है। नाटक की प्रस्तावना में एक हिन्दू पात्र और एक मुस्लिम पात्र सूत्रधार के रूप में प्रकट होते है और साम्प्रदायिक एकता का स्वर मुखरित करते हुए गले मिलकर गाते हैं—

> उन्हें कोई कैसे कहेगा कि दो हैं
> कि जो एक ही गोद के हैं पले।
> हम हिन्दू-मुसलमान मिल के चले॥
> वतन एक हिन्दोस्ताँ है हमारा
> सदा वह रहे और फूले-फले।
> हम हिन्दू-मुसलमान मिलके चले॥

इस नाटक में घटनाचक्र इस तरह घूमता है कि लोग दो वर्गों में विभाजित हो जाते हैं। अन्त में एक स्थिति ऐसी भी आती है कि रतन पांडे का पुत्र दंगाइयों से घिर जाता है, ऐसे समय में मानवीय सम्बन्धों का उदात्त आदर्श प्रकट करते हुए बफाती चाचा स्वयं अपने ही लोगों के आगे लाठी तान के खड़े हो जाते हैं। नाटक का यह अंतिम क्षण पशुता पर मनुष्यता की विजय का क्षण होता है जब पिता अपने पुत्र से कहता है—'प्रताप का बाप आज घर पर नहीं है; इससे मैं इधर से लड़ूँगा। तू उधर से लड़। उठा लाठी !' (अंक 3, दृश्य 12) यह मार्मिक दृश्य इस नाटक की आत्मा को उजागर करता है। नाटक में तत्कालीन गोरी सरकार के अत्याचारों और साम्प्रदायिक तत्त्वों के कुचक्रों की ओर संकेत करते हुए देश की स्वतन्त्रता के लिए चल रहे प्रयत्नों और सांप्रदायिक सद्भाव से संपृक्त लोगों के पारस्परिक मधुर संबंधों के मनोहर चित्र खींचे गये हैं। शिक्षा के अभाव में दीन-हीन लोगों को शोषण का शिकार होना पड़ता था और बिना कुछ सोचे-समझे लोगों के बहकावों में आकर संकीर्णता की आग में झुलसना पड़ता था। ऐसे समय में त्रिपाठी जी कल्पना के रंगीन संसार में विचरण करने वाले कवि (पात्र) का हृदय-परिवर्तन करा के उसे प्रौढ़ शिक्षा का प्रचारक बना देते हैं। प्रौढ़ शिक्षा से समूचा गाँव किस प्रकार लाभान्वित होता है इसे 'बफाती चाचा' के शब्दों में देखें—'बिना पढ़ा हुआ आदमी किस काम का ? उस दिन जो कांग्रेस की सभा हुई थी, उसमें मैंने यह देखा कि पढ़े-लिखे लोग अपनी और अपने बाल बच्चों की फिकर छोड़कर हमारी भलाई के लिए कितनी कोशिशें कर रहे हैं। मुझे शर्म मालूम हुई कि मैं खुद अपने बारे में कितना लापरवाह हूं।···मैं तो अंधेरे से उजाले में आ रहा हूँ। मेरे दिल के अन्दर रोशनी मालूम हो रही है।' (अंक 3, दृश्य 3) गाँव के सामूहिक समारोह में लड़कियों, स्त्रियों, किसानों और मजदूरों की टोलियाँ झुंड बनाकर नाचती-गाती हैं। इन वृन्द-गीतों में त्रिपाठी जी राष्ट्रभक्ति, स्वतंत्रता-प्रेम और गाँधी-जवाहर-प्रशस्ति का स्वर गुंजरित करते हैं। राष्ट्रीयता की भावना को परिपुष्ट करनेवाला यह नाटक अपने समय में काफ़ी चर्चित-प्रशंसित रहा था। अनेक मंचों पर इसने धूम मचायी। वस्तुतः यह त्रिपाठी जी का राष्ट्रीय नाटक है।

1946 ई. में त्रिपाठी जी ने 'अजनबी' नाटक लिखा, जो 1952 ई. में 'पैसा-परमेश्वर' के नाम से किंचित संशोधित होकर पुनः प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी में अपने ढंग का विचित्र नाटक है, जो अपनी चादर में अनेक छोटे-मोटे नाटकों को समेटे है। अजनबी, एक सुदूर कांतार स्थित बस्ती का निवासी जो नगर-सभ्यता की बारहखड़ी तक से अपरिचित है, नाटक का मुख्य पात्र है। वह आधुनिक समाज की उपलब्धियों से नितान्त अपरिचित है। चलती हुई रेल को विशाल अजगर समझनेवाले उस व्यक्ति को सभ्य समाज का मूल्यांकन करने का दायित्व

सौंपा जाता है। वह सारे देश में घूमता है, गाँवों-शहरों की यात्रा करता है, पूंजी-पति, डॉक्टर, वकील, लेखक, पत्रकार, पंडित, पुलिस आदि विविध व्यवसायियों से मिलता है। वह पाता है कि सभ्य कहलाने वाला संसार दुहरे स्वरूप वाला है, उसकी कथनी और करनी में अन्तर है, उसने अपने शरीर पर गुप्त जीवन और प्रकट जीवन नाम के दो बंधन और डाल लिये हैं। यह कृत्रिमता ही विश्व के लिए अभिशाप सिद्ध हो रही है। इस नाटक में मुख्य पात्र की सहायता से त्रिपाठी जी ने यह बताया है कि जो लोग वर्तमान सभ्यता में जन्मे और पले हैं वे नीम के कीड़े की तरह उसकी कड़वाहट अनुभव नहीं कर सकते। मानवीय मूल्यों से कोरी इस शहरी सभ्यता का नग्न चित्र अजनबी देखता है और वह अनुभव करता है कि सारे अनर्थों का मूल कारण स्वार्थपरता है, सिक्कों की लोलुपता है। मानव-जीवन की सच्ची झलक वह कहीं देखता है तो असभ्य कहलाने वाले लोगों के गाँवों में। स्वार्थ, लोभ, मोह, झूठ, पाखंड, धोखा, हिंसा आदि कुप्रवृत्तियों के विषैले वाता-वरण से बिलकुल अनजान ये गाँव ही मानव-सभ्यता के केन्द्र हैं। गाँव के मुखिया के प्रश्न करने पर कि सच्ची सभ्यता आप किसे कहते हैं, अजनबी उत्तर देता है— "जिसमें मनुष्य अपने लिये नहीं, बल्कि दूसरे के लिए जीता है।" यही नाटक का संदेश है, उनके कथानक का आदर्श है। नाटककार ने इसके पुनर्प्रकाशन को जो 'पैसा-परमेश्वर' नाम दिया है, वह भी सर्वथा उपयुक्त है।

'बा और बापू' (1953 ई.) लेखक के पाँच एकांकियों का संग्रह है, जिसमें शीर्षकीय एकांकी के अतिरिक्त चार अन्य हैं—सीजन डल है, तानी-नानी, समाना-धिकार और कुणाल। माता कस्तूरबा और राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को मुख्य पात्र बनाकर लेखक ने इस एकांकी की रचना की है। चार दृश्य के इस नाटक में बा और बापू के सेवा-भाव और मानव-प्रेम के आदर्श को चित्रित किया गया है। 'सीजन डल है' में एक ऐसे डॉक्टर का चित्रण है जो रोगों के फैलने की प्रतीक्षा करता रहता है और मलेरिया फैलने पर चाँदी की खनक का अनुमान करने लगता है। 'तानी-नानी' गुजरात की दो संगीत-प्रवीण युवतियाँ हैं जो संगीतज्ञ तानसेन के क्षयरोग का उपचार कर देती हैं और अन्त में आत्म-बलिदान कर अमर हो जाती हैं। 'समानाधिकार' में नारी-मुक्ति-आंदोलन की ओर संकेत है। वे यह प्रतिपादित करते हैं कि 'कानूनी अधिकार लेकर कोई पत्नी या पति सुखी नहीं हो सकते। सुख तो दो धाराओं को एक में मिलकर बहने में है। यमुना अपने नीले जल को अलग रखकर गंगा के प्रवाह में बह नहीं सकती।' त्रिपाठी जी ने 'कुणाल' एकांकी में कुणाल के इतिहास-प्रसिद्ध चरित्र पर प्रकाश डाला है।

कला की दृष्टि से त्रिपाठी जी की नाट्य-कृतियाँ भले ही मूल्यवान न हों, कथ्य-चयन, चरित्रांकन और संदेश-प्रसारण की दृष्टि से उन्हें महत्त्वपूर्ण मानना ही होगा। वे कुशल नाटककार नहीं हैं, यह बात उन्होंने स्वयं स्वीकार की। परंतु

दूसरे बटोहियों का मुँह ताकने की अपेक्षा स्वयं राह पर लगने का उनका साहस और प्रयास उनके सर्जक व्यक्तित्व को रेखांकित तो करता ही है।

व्यंग्य

व्यंग्य-लेखन में भी पंडित जी निपुण थे। व्यंग्यात्मक रचनाओं को उन्होंने 'प्रहसन' की संज्ञा दी। त्रिपाठी जी ने अपनी प्रहसनात्मक रचनाएँ कथा, नाटक, कविता और निबंध की शैली में की हैं। व्यंग्यात्मक फुटकर कविताएँ 'मानसी' में संगृहीत हैं। 'चंद' कविता में अंग्रेजों की लोलुपता पर व्यंग्य दृष्टव्य है—

रति के कपोल-सा मनोज के मुकुर-सा
उदित देख चंद को हिये में उमड़ा अनंद।
मैंने कहा, सोने का सरोज है सुधा के
सरवर में प्रफुल्लित अतुल है कला अमंद।
जानबुल-वंश का सपूत एक बोल उठा
लीजिए समझ और कीजिए प्रलाप बंद।
पहुँचे अवश्य अंगरेज वहाँ होते यदि
जानते कहीं जो वे कि सोना है कि चाँदी चंद॥

व्यंग्य शब्दों की मीठी चोट का दूसरा नाम है। व्यंग्य-लेखन में वही सफलता प्राप्त कर सकता है जो हास्य-विनोद के 'घाव करे गंभीर' वाले दर्शन की बारीकियों से अवगति रखता है। त्रिपाठी जी हास-परिहास को जीवन का अंग मानते थे। साहित्य में उन्होंने व्यंग्य के रूप में जो चुटकियाँ ली हैं, उनसे उनके विनोदी और विरोधी स्वरूप की झलक मिलती है। व्यंग्यकार अपनी रचना द्वारा अप्रिय और अवांछनीय मान्यताओं का विरोध करता है। कहने को तो वह अपनी बात सरलता और मधुरता से रखता है, परन्तु उसमें जो गंभीरता और तीक्ष्णता सन्निहित रहती है, वही वास्तव में व्यंग्य की शक्ति हुआ करती है। लेखक की दो व्यंग्यात्मक कृतियाँ हैं : दिमागी ऐयाशी (1926 ई.) और स्वप्नों के चित्र (1930 ई.)।

व्यंग्य या सटायर लिखने की प्रवृत्ति भारतेन्दु-काल में विकसित हुई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालमुकुंद गुप्त, बालकृष्ण भट्ट, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी प्रभृति लेखकों में व्यंग्यात्मक आख्यान लिखने की अद्भुत क्षमता थी। त्रिपाठी जी ने उन्हीं का अनुकरण करते हुए विनोद-वक्रता से अपनी कतिपय रचनाओं को जीवंत बनाया। 'दिमागी ऐयाशी' में उन्होंने मुख्यतया नारी-सौन्दर्य के सूक्ष्म अध्येता कवियों की बौद्धिक उड़ानों की चर्चा की है। अपने उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए वे 'दिमागी ऐयाशी' की भूमिका में लिखते हैं कि इन रचनाओं का उद्देश्य केवल हँसना-हँसाना नहीं है, बल्कि ऐसा प्रभाव निर्मित करना है 'जो कविता में अवांछनीय

कामुकता और आधारच्युत अतिशयोक्तियों की धारा को मंद कर देने में किसी हद तक समर्थ भी होगा।' रीतिकालीन नख-शिख वर्णन की प्रवृत्ति और ऊहात्मकता से उन्हें सख्त चिढ़ थी जो आधुनिक युग की मनोवृत्ति के सर्वथा विपरीत थी। कवियों का सम्यक् मार्गदर्शन करने के उद्देश्य से ही उन्होंने उनकी दिमाग़ी ऐयाशी पर प्रहार किया। इस पुस्तक में जिन आठ व्यंग्यात्मक रचनाओं को सम्मिलित किया गया है, वे हैं: स्त्रियों की एसेंबली, कवियों की एसेंबली, नख-शिख, नायिका-भेद, कवियों की कहानियाँ, छायावादी कवि और चित्रकार कवि तथा मुंशी मनबोधलाल। इनमें से पहली, छठी और सातवी रचना नाटक शैली में; दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवीं कहानी-शैली में तथा अंतिम आठवीं कविता-शैली में विरचित है। इन रचनाओं में आधुनिकता के रंग में रंगी रमणियों और कल्पना-लोक में विचरण करनेवाले कवियों की मानसिकता पर व्यंग्य किया गया है। 'कवियों की एसेंबली' का एक अत्यन्त रोचक दृश्य देखें—

"गर्मी का मौसम था। उत्तर प्रदेश में आगरा, झाँसी और प्रयाग ऐसे स्थान हैं, जहाँ अन्य जिलों की अपेक्षा अधिक गर्मी पड़ती है। उस साल इतनी गर्मी पड़ी कि तापमापक यन्त्र में पारा 117-118 डिग्री तक चढ़ गया। सैकड़ों आदमी लू लगने से मर गये। कुओं में पानी सूख गया। जंगलों में पशु और पक्षी पानी बिना मर गये। यह सब खबरें समाचार पत्रों में प्रकाशित हुईं। झाँसी के मेम्बर ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया—"इस बात की जांच की जाय कि इस साल झाँसी, प्रयाग और आगरे में अधिक गर्मी क्यों पड़ी? मेरा अनुमान है कि इसमें प्रकृति की क्रूरता नहीं है, बल्कि यह आग अपने ही घर की पैदा की हुई है। तीन सौ वर्ष पहले भी ऐसी घटना इस देश में हुई थी और उसका प्रभाव मानसरोवर तक पड़ा था। सुनिए महाकवि गंग ने कहा है:

बैठि थी सखिन संग प्रिय को जीवन सुन्यो
सुख के समूह में वियोग आग भरकी।
'गंग' कहै त्रिविध सुगन्ध ले पवन बह्यो
लागत ही बाके तन भई बिथा जर की।
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पहँ
लागत ही औरे गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो
जल जरि गयो, पंक सूख्यो, भूमि दरकी।।

जान पड़ता है उक्त तीन जिलों के पुरुष गर्मी में विदेश यात्रा करते हैं। उनकी विरहिणियों की विरहाग्नि से उन जिलों की गर्मी बढ़ जाती है।"

सर्व-सम्मति से यह निश्चय हुआ कि उक्त तीन जिलों के कलक्टरों को लिखा जाय कि वे गर्मी में अपने जिले से किसी विवाहित पुरुष को परदेश न जाने दें।"

उपर्युक्त चित्र से यह प्रतीत होता है कि त्रिपाठी जी कवियों की रीतिकालीन मानसिकता के विरोधी थे और वे उन्हें ऐसी रचना-प्रियता से विमुख करके ऐसे साहित्य की सर्जना में प्रवृत्त कराना चाहते थे जो व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए कल्याणकारी हो।

'स्वप्नों के चित्र' में अधिकांश रचनाएँ कथा-शैली में हैं और कुछ नाटक-शैली में। संग्रह की नौ रचनाओं में 'कवि का स्वप्न' और 'कुणाल' को छोड़कर शेष सभी व्यंग्यपरक हैं। दिमाग़ी ऐयाशी की कुछ रचनाएँ भी इसमें सम्मिलित कर ली गयी हैं। इन रचनाओं का भी वही सुधारात्मक दृष्टिकोण है। त्रिपाठी जी के मन में क्षोभ था कि शृंगारिक कविता ने देश के लोगों को विलासी, आलसी, निरुद्यमी और निस्तेज बना डाला है। स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रही स्वाभिमानी जनता को ऐसे साहित्य की कोई आवश्यकता नहीं है। कला की दृष्टि से नहीं, आज के साहित्य को उपयोगिता की दृष्टि से देखना होगा। उन्होंने पुस्तक की प्रस्तावना में घोषित किया कि अब समाज में उत्साह, शौर्य और सुरुचि उत्पन्न करनेवाले भावों की आवश्यकता है, कामुकता और विलासिता बढ़ानेवाले भावों की नहीं।

बाल-वाङ्मय

बच्चों के लिए लिखना आसान बात नहीं है। बाल-साहित्य की रचना लेखक की कसौटी मानी जाती है। इस मार्ग पर हर कोई नहीं चल सकता। जिसे बच्चों से प्रेम होता है, जो उनके स्वभाव की बारीकियों से परिचित होता है, जिसमें उनके विकास की चिन्ता होती है, जो उनकी बोली में बतिया सकता है और जो सरल भाषा में कविता-कहानी लिखने की कला में पारंगत होता है, वही बाल-साहित्य का सफल रचनाकार हो सकता है। आधुनिक काल में हिन्दी-साहित्य के विकास के आरंभिक चरण में बहुत ही कम ऐसे लेखक हुए जिन्होंने बालक-समुदाय के लिए उपयोगी साहित्य अधिकार के साथ लिखा। पं. रामनरेश त्रिपाठी ऐसे लेखकों में अगुआ थे। वे वस्तुतः बाल-वाङ्मय के वाल्मीकि के रूप में सुविख्यात हैं। उन्होंने बच्चों के लिए गद्य और पद्य दोनों में योजनाबद्ध तरीके से साहित्य का निर्माण किया। वे बाल-मनोविज्ञान के ज्ञाता थे। छोटे-छोटे बच्चों को उन्होंने ज्ञान-दान दिया था। वे यह जानते थे कि बच्चे क्या चाहते हैं और उनकी भूख किस प्रकार के साहित्य से मिट सकती है। साथ ही वे यह भी जानते थे कि बच्चों के साहित्य में पौष्टिकता के ऐसे तत्त्व होने चाहिए, जिनसे उनका सर्वांगीण विकास हो सके। यही कारण है कि उन्होंने बच्चों के खेल-कूद के गीतों से लेकर साहस भरी कहानियों की रचना अत्यन्त विदग्धता के साथ की है।

त्रिपाठी जी को गाँव का जीवन अत्यधिक प्रिय था। उन्होंने बच्चों के लिए भी गाँवों के वातावरण से कहानियाँ चुनीं। पीढ़ियों से चली आ रही गाँवों की

कहानियों में बच्चों के विकास के लिए पर्याप्त पौष्टिक तत्त्व उपलब्ध होते हैं। इसे त्रिपाठी जी एक दृष्टांत द्वारा समझाते हैं—

"एक राजा था, उसके सात बेटे थे। राजा ने कहा जो बेटा फलाँ टापू से फलाँ फल ला देगा, उसे वह आधा राज-पाट दे देगा। सातों बेटे अलग-अलग राहों से जाते हैं। रास्ते में अनेक कष्ट भोगते हैं। अन्त में, सबसे छोटा बेटा ही सफल होकर लौटता है। राजा उसे आधा राज्य देता है। बेटा उसे बड़े भाई को सौंप देता है।

ऐसी कहानियों से बच्चों में साहस के काम करने का हौसला तो बढ़ता ही है; रास्ते के कष्टों का और उनसे छुटकारा पाने का ज्ञान भी उनको हो जाता है। और आधा राज पाकर उसे बड़े भाई को सौंप देने का त्याग भी उनको हृदयंगम करा दिया जाता है।" (दे० हमारा ग्राम साहित्य)

इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि भारतीय परिवेश की और विशेष कर गाँवों में प्रचलित कहानियों में साहस, कष्ट-सहिष्णुता, ईमानदारी, त्याग आदि भावों का प्राचुर्य रहता है। छोटे-छोटे बालकों के कोमल चित्त पर ऐसे उदात्त भावों का अचूक प्रभाव पड़ता है। इसीलिए त्रिपाठी जी ने अपनी बालोपयोगी रचनाओं में ईश्वर-भक्ति, देश-प्रेम, साहस, दया और स्वावलंबन के भाव भर दिये हैं। जिसने भी बचपन में उनकी 'प्रार्थना' कविता (हे प्रभो आनंददाता, ज्ञान हमको दीजिए) को हृदयंगम कर लिया, उसके चित्त में सर्व-शक्तिमन ईश्वर का चित्र सदा के लिए अंकित हो गया। उसी प्रकार देश-प्रेम के जो भाव उन्होंने अपनी रचनाओं से उभारे हैं, वे बच्चों को मातृभूमि पर बलिदान होने की सतत प्रेरणा देते रहते हैं।

बच्चों को संस्कारशील बनाने के लिए उन्होंने स्वयं रीडरें तैयार कीं। तत्कालीन शासन द्वारा निर्धारित रीडरों में बच्चों के सम्यक् मानसिक विकास के लिए आवश्यक सामग्री के अभाव की ओर उनका ध्यान गया। उपलब्ध पाठ्य सामग्री के घातक परिणामों से वे चिंतित थे। उन्होंने देखा कि वर्नाक्यूलर स्कूलों की ऊँची से ऊँची कक्षा की पढ़ाई समाप्त करने के बाद लड़कों का जीवन एक विचित्र साँचे में ढला हुआ-सा निकलता है। उनमें आत्म-गौरव, देशभक्ति और समाज-सेवा का भाव होता ही नहीं; अपने प्राचीन इतिहास की जानकारी भी उन्हें एक विकृत रूप में ही होती है, सो भी नाममात्र को; लोक-व्यवहार का उन्हें बहुत ही कम ज्ञान होता है, उनकी व्यवसाय-बुद्धि तो बिलकुल कुचल ही दी जाती है। वे बड़े ही डरपोक और अस्थिर प्रकृति के हो जाते हैं। लोमड़ी, सियार, मगर, मेंढक, कुत्ते, बिल्ली, गधे और मकड़ी के पाठों से भरी रीडरों को पढ़ाने के लिए विवश अध्यापक के पास इतना समय कहाँ कि वह चाणक्य, चंद्रगुप्त, विक्रमादित्य, कालिदास, अकबर तथा धर्म, सदाचार, शिष्टाचार, सौजन्य, धैर्य, वीरता आदि

का ज्ञान कराये? अतः पुस्तकों का परिवर्तन नितांत आवश्यक है। त्रिपाठी जी ने इसी परिप्रेक्ष्य में ऐसी पुस्तिकाओं को तैयार किया जिनमें बालक-बालिकाओं को देशभक्त, समाज-सेवक, सभ्य, सदाचारी और कर्त्तव्यपरायण बनाने की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध थी।

त्रिपाठी जी बाल-साहित्य के विशेषज्ञ थे। ग्रंथ-विषय, भाषा, शैली और प्रस्तुति के सम्बन्ध में उनके सुचिन्तित विचार थे। वे जानवरों की कहानियों, कौतूहल जगाने वाले भ्रमण-वृत्तांतों और दूसरों को सहायता पहुँचानेवाले कार्यों के वर्णनों को बच्चों के रुचिकर विषय समझते थे। देश-विदेश के महापुरुषों के जीवन की सरल कथाएँ, देशभक्ति का भाव भरने वाली लघु कविताएँ और खेल-कूद की सचित्र पुस्तकें भी बच्चों को प्रिय होती हैं। बालोपयोगी साहित्य की भाषा की सरलता के वे पक्षधर थे। उनका कहना था कि बच्चों की पुस्तकों की भाषा व्याकरण से शुद्ध और छोटे-छोटे वाक्यों वाली होनी चाहिए। उनकी दृष्टि में वर्णनात्मक शैली की रोचकता बालकों के लिए आकर्षण पैदा करती है। चित्रों को बाल-साहित्य का अनिवार्य अंग मानते थे। मुद्रण के सम्बन्ध में उनका कहना था कि "बच्चों के लिए जो पुस्तकें तैयार की या कराई जाएँ, उनकी बाहरी सज-धज बड़ी ही आकर्षक होनी चाहिए। कवर तो रंग-बिरंगा होना ही चाहिए। भीतर की छपाई भी बहुत साफ़-सुथरी और नये टाइप में होनी चाहिए। अक्षर मोटे हों, काग़ज़ मोटा और चिकना हो, स्याही रंग-बिरंगी हो, छपाई साफ़ हो और यदि हो सके तो टाइप और चित्र भिन्न-भिन्न स्याहियों में छपे हों। बच्चों की पुस्तकों में बार्डर भी हो तो बच्चे पसंद करते हैं।" बाल-साहित्य की बिक्री की सफलता के पीछे उनका यही प्रकाशन-दर्शन था।

यों तो त्रिपाठी जी में बाल-साहित्य के लेखन की प्रवृत्ति का उदय फतेहपुर में ही हो गया था, परन्तु प्रयाग में बसने के बाद ही उसका विकास सम्भव हो सका था। मारवाड़ी समाज में रहकर उन्होंने उद्यमिता का गुण ग्रहण किया था। प्रयाग में उन्होंने प्रकाशन-व्यवसाय को अपनाया। बाल-साहित्य के निर्माण, प्रकाशन, विक्रय और प्रचार के क्षेत्र में वे मनोयोग से जुट गये। उन्होंने बच्चों के लिए कहानियाँ लिखीं, कविताएँ लिखीं, छोटे-छोटे नाटक और जीवन-चरित लिखे और तैयार कीं उनके लिए शिक्षाप्रद पाठ्य-पुस्तकें। उनकी बाल-पुस्तकों की संख्या चालीस के लगभग है। कुछ पुस्तकें तो एक से अधिक भागों में प्रकाशित हुईं, जैसे बाल-कथा-कहानी (12 भाग), हिन्दी ज्ञानोदय (6 भाग), कन्या बोधिनी (6 भाग) और गुपचुप कहानियाँ (2 भाग)। बाल-कथा-कहानी को तो इतनी प्रसिद्धि मिली कि उनके एक-एक भाग के कई संस्करण निकले और उनकी लगभग एक लाख प्रतियों की बिक्री हुई थी।

बाल सुधार शिक्षा, मोहनमाला, मोहन भोग, मोतीचूर के लड्डू, *बानर*-

संगीत, हंसू की हिम्मत, खोजो खोज निकालो, नेता बुझौवल आदि उनकी पद्य रचनाएँ हैं। बालक सुधार-शिक्षा और कविता-विनोद की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। बाल-छात्रों के लिए रचित शिक्षावलियों और बोधनियों में भी उन्होंने छोटी-छोटी आकर्षक कविताएँ रख दी है। ईश्वर-भक्ति विषयक बाल-कविताओं में 'प्रार्थना', 'हे भगवान', 'ईश्वर-स्तुति' आदि उनकी सुप्रसिद्ध रचनाएं हैं। हिन्दी की दूसरी पुस्तक (हिन्दी ज्ञानोदय, भाग 2) में संकलित उनकी 'हे भगवान' शीर्षक कविता देखिए—

जगत-पिता हे दया निधान !
शरणागत हूँ हे भगवान !
विद्या धन दो, सत्य वचन दो
निर्भय मन दो हे भगवान।
कभी पाप की ओर न जाऊँ
सदा धर्म में चित्त लगाऊँ
यही सुमति दो, सत संगति दो
उत्तम गति दो हे भगवान।
मेरा भारत, मेरी भाषा
प्रेम, प्रतिज्ञा, उत्तम आशा
धर्म प्रबल हो सत्य सरल हो
सदा सफल हो हे भगवान।
रहे स्वतन्त्र देश यह मेरा
कभी न हो अज्ञान अँधेरा
ऐसा वर दो, सुन्दर घर दो
सुख से भर दो हे भगवान !

'भारत' त्रिपाठी जी का सबसे प्रिय विषय था। ईश्वर-स्तुति के तुरन्त बाद देशभक्ति के भाव उनकी कविता में उभर आते हैं। वे राष्ट्रीय कवि थे। देश के चिन्तन से बढ़कर किसी अन्य विषय को वे महत्त्वपूर्ण नहीं मानते थे। यही कारण है कि उनकी बाल-कविताओं में मातृभूमि-प्रेम, स्वातंत्र्य-कामना और एकता का मनोहर स्वर उभरा है। बच्चे-बच्चे में वे ये भाव भर देना चाहते हैं कि भारत उनका देश है, स्वतन्त्रता उन्हें प्राणों से अधिक प्यारी है और एकता ही देश की महान् शक्ति है। उनकी 'भारतवर्ष की महिमा' कविता इन्हीं भावों से ओत-प्रोत है। 'कन्या-बोधिनी' के पाँचवें भाग में प्रकाशित इस रचना में उन्होंने राष्ट्रीय एकता के महत्त्व का प्रभावशाली ढंग से प्रतिपादन किया है। बंगाली, पजाबी, महाराष्ट्री और युक्त प्रान्त की कन्याएँ जब मंच पर बारी-बारी से आकर अपने-अपने प्रांतों की महिमा का बखान करती हैं, तो उनके बीच से एक भारतीय कन्या

उभरती है जो राष्ट्रीय एकता और अखण्डता का सन्देश देकर सबको मातृभूमि भारत का गुणगान करने की प्रेरणा देती है। भारतीय कन्या के शब्दों में कवि का सन्देश है—

प्यारी बहनो, क्यों घमण्ड की बातें करके लड़ती हो?
पर की निंदा कर स्वप्रांत के गाकर गीत झगड़ती हो?
नहीं जानती हो तुम हम सब एक देश में रहती हैं।
भारत भूमि हमारी जननी, जिसे देश निज कहती हैं॥
बंग, पंचनद, युक्त प्रांत, दक्षिण ये जो कहलाते हैं।
इसी महा विख्यात देश भारत के प्रांत कहाते हैं॥
प्रांत-प्रांत ये छोटी बातें अब तुम मन से दूर करो।
भिन्न भाव को छोड़ एकता से विचार भरपूर करो॥
निज शरीर के अंग काटकर जीवित भला रहोगी तुम?
प्रांत अलग कर देने पर फिर भारत किसे कहोगी तुम?
इसीलिए आओ सब मिलकर भारत का गुणगान करें।
ऐसे सभ्य देश में पैदा होने का अभिमान करें।"

त्रिपाठी जी ने 'बालक-बालिकाओं को जो सन्देश आज से लगभग चालीस वर्ष पहले दिया था, उसकी आज भी उतनी ही आवश्यकता है। आज हम अपने बच्चों को स्कूलों में तथा रेडियो-टी. वी. द्वारा सामूहिक-गान की शिक्षा देते हैं। उन्हें ऐसे गीत मिलजुल कर गाने को प्रेरित करते हैं जिनसे देशभक्ति का स्वर फूटता हो। त्रिपाठी जी ने ऐसे गीतों की रचना और उनके समवेत स्वरों में गाने की उद्भावना बरसों पहले कर ली थी। एक प्रकार से वे इस दिशा में भी पथ-प्रदर्शक ही माने जाएंगे। 'बानर-संगीत' (1934 ई.) नामक पुस्तक में उन्होंने ऐसे गीतों को स्थान दिया है जिन्हें बच्चे झुंड बनाकर गाएँ। पं. नारायण मोरेश्वर खरे और विष्णु अण्णा जी कशालकर ने इन गीतों की स्वर-लिपियाँ तैयार कीं जो पुस्तक के अन्त में दे दी गयी हैं। गाने, नाचने, खेलने और अभिनय करने के लिए रचे गये उनके गीतों की एक बानगी देखें—

"मेरे कंधे कौन चढ़ा? ...बाँडा राजा!
उतरी बाँडा मैं चढ़ूँ ...वाह वा!
खीर खिलाऊँ ...वाह वा!
नीर पिलाऊँ ...वाह वा!
पेड़ा ले लो ...वाह वा!
बरफी ले लो ...वाह वा!

आज ऐसे गीत कहाँ हैं? अब वे गीत 'जिन्हें हमारे बाप-दादे भी जब वे बच्चे थे, गलियों में बाग-बगीचों में, खेतों में, खलिहानों में, वनों में, बैठकों में और घर

के सामने नीम के पेड़ के नीचे गाकर नाचते और गीतों के शब्दों में से अपने बाल-जीवन का सुख निचोड़ते रहे होंगे' लुप्त होते जा रहे हैं। इसीलिए त्रिपाठी जी ने खड़ी बोली में सुन्दर अभिनव गीतों की रचना की। सूर की याद दिलाते हैं उनके श्रीकृष्ण जो माखन की चोरी की शिकायत सुनकर माँ से बिगड़कर कहते हैं—

यह ले अपनी कमली मैया यह ले अपनी लोटी।
तेरी कौन चरावे गैया खाकर बासी रोटी।।
मेरे पीछे पड़ी हुई है बल भैया की टोली।
धूप सहूँ, नित भूख सहूँ या उनकी सहूँ ठिठोली।।
घर आया तो तू ले बैठी दूध दही की चोरी।
श्याम श्याम कह मुझे चिढ़ाती है ये ग्वालिन गोरी।।
मैं जाता हूँ तू सुख से रह और रहें बलभैया।
जाकर कहीं बना लूँगा मैं और किसी को मैया।।"

(अभिनय गीत)

कैसा मोहक दृश्य है मन मोहन का ! त्रिपाठी जी कवि ही नहीं, कुशल कलाकार थे। शब्दों के चित्रों से जादू करना उन्हीं का कमाल था। शिशुओं, बालकों और किशोरों सबके लिए उन्होंने उपयुक्त रचनाएँ की। उनकी रची 'मीठी बोली' कविता नन्हें-मुन्नों की तुतलाती बोली में फूटती है तो किसका मन लुभाये बिना रह जाएगा ?

त्रिपाठी जी ने कविताओं की तरह ही बच्चों के लिए सुन्दर कहानियाँ लिखीं। दो-चार नहीं, दस-बीस नहीं, बल्कि सैकड़ों कहानियाँ रचकर उन्होंने बाल-जगत में बाँट दीं। उनकी कहानियों में साहस, कर्त्तव्यपरायणता, परिश्रम, समय-पालन, सत्य-कथन आदि सद्गुणों का प्रकाश छिटका हुआ है। बाल-कथा-कहानी (12 भाग) तो कहानियों की खान थी। 'मौत के सुरंग की कहानी' (1940) किशोरों के लिए लिखी गयी एक साहसपूर्ण यात्रा की कहानी है। 'आदमी की कीमत' एक उपदेशप्रद कथा है। 'हिन्दी ज्ञानोदय' के दूसरे भाग में उनकी प्रसिद्ध 'आओ और जाओ' कहानी संकलित है, जिसमें उन्होंने दो भाइयों के माध्यम से मिलजुलकर काम करने की उपयोगिता और महत्ता पर प्रकाश डाला है। एक भाई अपने नौकरों को आदेश देना चाहता है जब कि दूसरा भाई उनसे काम लेना जानता है। एक 'जाओ, काम करो' के और दूसरा 'आओ, काम करें' के सिद्धांत पर चलता है। पहला अपनी अकड़ और धौंस के कारण नुकसान उठाता है, जबकि दूसरा अपने स्नेह और सहयोग के कारण लाभ का भागीदार बनता है। ऐसी अनेक सुन्दर उपदेशप्रद कहानियों की उन्होंने रचना की थी।

त्रिपाठी जी बाल-साहित्य की विविध शैलियों के उद्भावक रचनाकार थे। उन्होंने चित्रात्मक शैली में भी बालकों की कहानियाँ लिखीं। 'गुपचुप कहानियाँ'

और 'कहानी के कल-पुर्ज़े' ऐसी ही पुस्तकें हैं, जिनमें उन्होंने चित्रों के माध्यम से कहानी को समझाने की चेष्टा की है। छोटे-छोटे बच्चे इन चित्रों को देखकर, समझकर और मिलाकर आप ही कहानियाँ रच डालने में समर्थ हो जाते हैं। त्रिपाठी जी ने यह अनुभव किया कि इस पद्धति से 'बच्चों में हर चीज़ को ग़ौर से देखने, तर्क करने और मन में उपजी हुई बात को बोलकर प्रकट करने की आदत पड़ जाती है।' उनकी बाल-कथा-साहित्य की अन्य उल्लेखनीय पुस्तकें हैं, रूपा, भय बिन होय न प्रीति, बेल कुमारी, बुड़िया-बुढ़िया किसे खाऊँ, फूल रानी, पकड़ पुछकटे को, तीन सुनहरे बाल, तीन मेमने, डंक चुड़ैल रानी, चटक-मटक की गाड़ी आदि।

बालकों में उत्साह, साहस, धैर्य और त्याग की भावना जाग्रत करने के उद्देश्य से उन्होंने महापुरुषों की जीवनियाँ भी सरल भाषा में लिखीं। महात्मा बुद्ध, अशोक, चन्द्रगुप्त, आल्हा और हरिश्चन्द्र के जीवन-चरित्रों को उन्होंने बड़े आकर्षक ढंग से तैयार किया। उन्होंने बच्चों के लिए छोटे-छोटे नाटक भी लिखे जो 'पेखन' (1937 ई.) नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए। पेखन संस्कृत के 'प्रेक्षण' शब्द का अपभ्रंश रूप है, जिसका अर्थ तमाशा भी होता है। (जग पेखन तुम देखन हारे। विधि हरि संभु नचावन हारे ॥—तुलसी) त्रिपाठी जी को बाल-नाटकों के लिए पेखन शब्द ही सर्वथा उचित जान पड़ा। इस संग्रह में उन्होंने बच्चों द्वारा अभिनय करने योग्य छः नाटक दिये हैं—मंगल मंदिर, कर्त्तव्यपालन, ध्रुव, एकलव्य, इन्द्र का अखाड़ा और मौत के सिपाही। इन नाटकों में उन्होंने दया, परोपकार, कर्त्तव्यनिष्ठा, ईश्वर-भक्ति, गुरु-भक्ति और लोक-सेवा के आदर्श उपस्थित किये हैं। अपने समय में ये पेखन (बाल-नाटक) काफ़ी बालप्रिय हुए थे।

त्रिपाठी जी द्वारा विरचित शिक्षाप्रद रीडरों की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। शिशुओं के लिए अक्षर-अंक का ज्ञान करानेवाली प्राइमरें (दो भाग) और बालकों तथा बालिकाओं के लिए उन्होंने अलग-अलग पुस्तकें तैयार कीं जिनमें बोधप्रद कहानियाँ, रसीली कविताएँ और विविध विषयों पर छोटे-छोटे लेख दिये गये हैं।

त्रिपाठी जी वास्तव में बाल-साहित्य के पण्डित थे। नितांत वैज्ञानिक ढंग से उन्होंने बालोपयोगी साहित्य का निर्माण किया था। वे बच्चों के साथ उन्हीं की बोली में बतियाने की विलक्षण क्षमता रखते थे।

3

बहुआयामी लेखन

पं. रामनरेश त्रिपाठी बहुआयामी लेखक थे। उनका मौलिक साहित्य जितना बहुविध विस्तृत और प्रचुर है, उतना ही उनका विवेचनात्मक साहित्य भी है। ज्ञान-विज्ञान की अनेक उपयोगी कृतियों की रचना करके उन्होंने साहित्य की श्री-वृद्धि में अपना योगदान दिया। विवेचनात्मक साहित्य के अन्तर्गत हम त्रिपाठी जी द्वारा विवेचित भाषा-साहित्य के इतिहास पर, उनके द्वारा की गयीं समालोचनाओं एवं टीकाओं पर तथा उनके द्वारा संपादित-संकलित साहित्य पर विचार करेंगे।

साहित्येतिहास

त्रिपाठी जी ने हिन्दी और उर्दू भाषा के साहित्य का परिचयात्मक इतिहास प्रस्तुत किया था। 'कविता कौमुदी' के प्राचीन हिन्दी, आधुनिक हिन्दी और उर्दू खंडों की विद्वत्तापूर्ण भूमिकाओं में उन्होंने जो खोजपूर्ण विचार व्यक्त किये थे, उन्हें बाद में स्वतन्त्र पुस्तकों के रूप में उन्होंने प्रकाशित कर दिया। वे हैं—**हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास** (1923 ई.), **खड़ी बोली की कविता का संक्षिप्त परिचय** (1939 ई.) **और उर्दू जबान का संक्षिप्त इतिहास** (1940 ई.)। साहित्येतिहास की प्रथम कृति 'हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास' में उन्होंने भाषा, हिन्दी का पुराना नाम, हिन्दी गद्य, हिन्दी पद्य, हिन्दी और वैष्णव, हिन्दी और जैन, हिन्दी और सिख, हिन्दी और गुजराती, हिन्दी और मुसलमान, हिन्दी और उर्दू, हिन्दी कविता तथा हिन्दी की वर्तमान दशा शीर्षकों के अन्तर्गत हिन्दी भाषा के विकास और उसके विविध आयामों की कहानी कही है। कविता कौमुदी (प्रथम भाग) की भूमिका में आवश्यक संशोधन करके उसे उन्होंने विवेच्य पुस्तक का रूप दिया। मूल भूमिका के लिखने के समय तक उनके सामने इतिहास विषयक दो ही मुख्य पुस्तकें थीं, एक पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी कृत हिन्दी भाषा की उत्पत्ति तथा दूजी मिश्रबंधुकृत हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास। उनके सामने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशनों

में पढ़े गये कुछ महत्त्वपूर्ण लेख भी थे। इन सबके आधार पर उन्होंने हिन्दी का एक छोटा-सा इतिहास लिख डाला था। यह बात 1917 ई. की है। 1922-23 तक उनके सामने कुछ और कृतियाँ और निबन्ध आये, जिनका अध्ययन करके उन्होंने इतिहास-विषयक अपनी मान्यताएँ निश्चित कीं और 'पुराने इतिहास को नये सिरे से बढ़ाकर' प्रस्तुत किया।

त्रिपाठी जी ने हिन्दी के नाम पर विशेष विचार किया है। हिन्दी का पुराना नाम हिन्दवी या हिन्दुई है, जिसका अर्थ है हिन्दुओं की भाषा। वे लिखते हैं कि आज से पाँच हजार वर्ष पहले की पारसियों की मुख्य धर्म-पुस्तक 'दसातीर' में हमारे देश का नाम 'हिन्दू' लिखा मिलता है। उक्त पुस्तक में एक वाक्य है—'अकन् बिरहमने व्यास नाम अज़ हिन्द आमद बसदाना के अकल चुनानहत।' (जरथ्रुश्त की 65वीं आयत) अर्थात् व्यास नाम का एक ब्राह्मण हिन्द से आया है, जिसके समान कोई पंडित नहीं। आगे पुस्तक में लिखा है—'वे हिन्द बाज गश्ते।' अर्थात् फिर वह हिन्द को लौट गया। इससे त्रिपाठी जी यह निष्कर्ष निकालते हैं कि महर्षि व्यास के समय ईरान के लोग इस देश को हिन्द कहते थे। तब से ही यहाँ के निवासियों का नाम हिन्दी या हिन्दू और भाषा का नाम हिन्दवी या हिन्दी प्रचलित है।

हिन्दी-साहित्य के विकास के विविध सोपानों की चर्चा करते हुए लेखक ने हिन्दी-गुजराती और हिन्दी-उर्दू के संबंधों पर भी प्रकाश डाला है। उन भाषाओं का सम्बन्ध बहुत निकट का है। "वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड़ पराई जाणे रे, पर दुःखे उपकार करे तोए मन अभिमान न आणे रे।" (—नरसी मेहता) पद को पढ़ने से यह बात प्रमाणित हो जाती है। वे हिन्दी और उर्दू को दो पृथक् भाषाएँ मानना उचित नहीं समझते थे। वे लिखते हैं—"हिन्दी और उर्दू में सिर्फ़ इतना ही अन्तर है कि हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और संस्कृत शब्दों की उसमें बहुलता रहती है; उर्दू फारसी लिपि में लिखी जाती है और उसमें अरबी और फारसी के शब्दों की अधिकता रहती है। गुजराती भाषा के भी दो रूप हैं, एक पारसियों की गुजराती और दूसरी गुजरातियों की गुजराती। पारसियों की गुजराती में अरबी, फारसी के शब्द अधिक होते हैं और गुजरातियों की गुजराती में संस्कृत और अपभ्रंश के शब्द। पर, गुजराती भाषा के अलग-अलग नाम नहीं। दोनों रूपों का एक ही नाम है। ऐसा ही सम्बन्ध हिन्दी और उर्दू का है।"

कविता-कौमुदी (दूसरा भाग) की भूमिका का संशोधन करके त्रिपाठी जी ने 1939 ई. में उसे 'खड़ी बोली की कविता का संक्षिप्त परिचय' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए सिद्ध किया कि आज की कविता के बीज वस्तुतः अमीर खुसरो के समय में ही पड़ गये थे। उनके विचार से उस समय जो भाषा प्रचलित थी, वह भी हिन्दी ही थी।

एक उदाहरण देकर वे इसे सिद्ध भी करते हैं— 'फारसी बोले आईना। तुर्की बोले पाईना। हिन्दी बोलत आरसी आये। मुँह देखे जो इसे बताये। शर्मो हया दर हिन्दी लाज। हासिल कहिये बाज खिराज।' त्रिपाठी जी ने यह स्वीकार किया कि व्रजभाषा का भंडार खड़ी बोली के भंडार से बहुत बढ़ा-चढ़ा है। व्रजभाषा के कवियों की टक्कर का एक भी कवि अभी तक खड़ी बोली में नहीं हुआ है। परन्तु साथ ही वे यह दृढ़ विश्वास व्यक्त करते हैं कि खड़ी बोली की कविता की ओर लोगों की रुचि जिस तेज़ी से बढ़ रही है, उसे देखकर यह कहना पड़ता है कि यह खड़ी बोली के किसी महाकवि के शीघ्र आविर्भूत होने की सूचना है। उनकी यह भविष्यवाणी निराधार या असत्य नहीं थी। खड़ी बोली की कविता ने कालांतर में एक से एक श्रेष्ठ कवियों को जन्म दिया। इस पुस्तक में कवि ने खड़ी बोली की मुख्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए प्रमुख रचनाकारों का परिचय देने का प्रयास किया है।

'उर्दू ज़बान का संक्षिप्त इतिहास' (1940 ई.) पुस्तक में त्रिपाठी जी ने उर्दू भाषा और उसकी कविता के स्वरूप का सुन्दर परिचय दिया है। उर्दू मुहावरों से समृद्ध भाषा है और अनेक विशेषताओं से परिपूर्ण है। ऐसी भाषा के लालित्य और माधुर्य की अवगति हिन्दी के पाठकों को हो, इसी उद्देश्य से उन्होंने इसका प्रकाशन किया। त्रिपाठी जी ने बताया है कि चंद बरदाई की कविता में अरबी, फारसी और तुर्की के सैकड़ों शब्द मिलते हैं। यही नहीं, स्वयं तुलसीदास जी ने भी उर्दू के शब्दों का प्रयोग मानस में किया था। पुस्तक में उर्दू पद्य, उर्दू के युग (पाँच), छंदशास्त्र, ग़ज़ल, कसीदा, मसनवी, मरसिया, रुबाई, शेर आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। उर्दू कविता के विकास का परिचय देते हुए त्रिपाठी जी लिखते हैं कि "मुसलमानों में भी कविता का प्रचार उनके आदि-काल से है। अरब में इतने अधिक कवि हुए, जितने संसार की किसी जाति में शायद ही हुए होंगे। फ़ारस तो कविता की क्रीड़ा-भूमि ही है।...उर्दू के शरीर में फ़ारसी का प्राण है। मुसलमान अरब से निकलकर जहाँ-जहाँ गये, अपने मुशायरे साथ ले गये और उन्होंने कविता को अपने दैनिक जीवन का एक अंग बना रक्खा।" (पृ. 46-47) त्रिपाठी जी को उर्दू कविता बहुत प्रिय थी। पुस्तक में उन्होंने उर्दू कविता की खूबियों का जी खोलकर वर्णन किया है, किन्तु साथ ही उसकी कमजोरियों पर भी दृष्टिपात किया है। हिन्दी में उर्दू भाषा की कविता का परिचय देने वाली कदाचित् यह पहली पुस्तक है, अतः इसका महत्त्व कम नहीं।

समालोचना

पं. रामनरेश त्रिपाठी केवल स्रष्टा साहित्यकार ही नहीं थे, साहित्य के गंभीर शोधक, समीक्षक और मीमांसक भी थे। भाषा और साहित्य के क्षेत्र में, और

विशेषकर तुलसी-साहित्य के परिप्रेक्ष्य में, उन्होंने अपनी गवेषणात्मक और विवेचनात्मक दृष्टि से जो कार्य-संपादन किया है, वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन और उनके काव्य-साहित्य पर उन्होंने दो ग्रन्थ प्रकाशित किये—तुलसीदास और उनकी कविता—दो भागों में (1937 ई.) तथा तुलसीदास और उनका काव्य (1951 ई.)। बचपन से ही त्रिपाठी जी रामायण की भक्ति और तुलसी की श्रद्धा से रसप्लुत और भावाभिभूत थे। दस वर्षों तक कठोर परिश्रम करके 1935 में उन्होंने रामचरितमानस की टीका प्रकाशित की थी। इसमें उन्होंने तुलसी के जीवन और उनके काव्य के सम्बन्ध में एक पांडित्यपूर्ण भूमिका भी लिख दी थी। मानस का सतत पारायण-चिंतन होते रहने से उन्होंने अनुभव किया कि तुलसीदास जी के जन्म-स्थान, भाषा आदि के सम्बन्ध में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। उन्होंने यह भी देखा कि तुलसी पर जो अध्ययन अब तक हुआ था, उसमें धार्मिक भावना ही प्रमुख थी। साहित्यिक और भाषिक दृष्टि से तुलसी के जीवन-तथ्यों के मूल्यांकन की आवश्यकता की अनुभूति उन्हें हुई। तुलसी के जीवन के सम्बन्ध में कई बातों की जानकारी उन्हें तुलसी-साहित्य ही से मिली। अतः उन्होंने उन मान्यताओं को प्रकाश में लाने का निश्चय किया। उन्होंने अपना दृष्टिकोण प्रमाणपूर्वक विद्वानों के समक्ष रक्खा। उन्होंने यह मत निश्चित किया कि तुलसी का जन्म स्थान सोरों (एटा) था। तुलसी की जन्म-स्थली के बारे में अनेक मत प्रचलित थे। डॉ. ग्रियर्सन, शिवनंदन सहाय, रामरसरंगमणि आदि विद्वानों ने 'तारी' को तुलसी की जन्मस्थली माना था। 'राजापुर' के पक्ष में तो अनेक विद्वान थे ही। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी भाषा के आधार पर राजापुर को ही तुलसी का जन्मस्थान माना है। त्रिपाठी जी की गवेषणा सोरों के पक्ष में रही। वे स्वयं 1935 ई. में सोरों गये और उन्होंने वहाँ की भाषा का अध्ययन किया, किंवदंतियाँ जुटायीं और मानस की भाषा और प्रसंगों से मिलाकर अपने निष्कर्ष निकाले। उन्होंने तुलसी-साहित्य से ऐसे अनेक शब्द ढूँढ़ निकाले, जिनका अर्थ सोरों में प्रचलित अर्थ से मेल खाता था जैसे 'तायो' (स्रवन नयन मन लगे सब थलपति तायो—विनय पत्रिका) जिसका अर्थ है 'जाँचा'। राजापुर में इस शब्द का भिन्न आशय होता है जिसका उपयोग करने पर पंक्ति का अर्थ नहीं बैठता। सोरों-क्षेत्र में अनेक बोलियों का प्रभाव होने से तुलसी-काव्य पर भी इसका प्रभाव परिलक्षित होता है। त्रिपाठी जी ने मारवाड़ी, गुजराती, पंजाबी, अरबी, फ़ारसी शब्दों के आधार पर भी यह सिद्ध किया कि तुलसी यदि सोरों के नहीं होते तो उनके साहित्य में उक्त भाषाओं के शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ होता। लेकिन मात्र कुछ शब्दों के प्रयोग से जन्म-स्थान का निर्णय कर पाना कई विद्वानों को सम्यक नहीं लगा। अतः वे त्रिपाठी जी के विचार से सहमत नहीं थे। फिर भी त्रिपाठी जी की अपनी दृष्टि थी, अपना अध्ययन था, अपना प्रतिपादन था।

विवेच्य समालोचनात्मक ग्रंथों में बाह्य और अंत: साक्ष्य के आधार पर उन्होंने तुलसीदास जी के जीवन और काव्य के अनेक पहलुओं की विवेचना की। संगीतज्ञ, गणितज्ञ, ज्योतिषज्ञ तुलसी के बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व पर उनकी इन कृतियों से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। भारत के भिन्न-भिन्न भाषाओं में हुए मानस के अनुवादों की चर्चा भी त्रिपाठी जी करते हैं, जैसे उड़िया में गोविंद साव तेली द्वारा विरचित गोविंद रामायण, खेरियार के राजा बीर विक्रमसिंह, बाबू राम-प्रसाद बोहिदार तथा पं. स्वप्नेश्वरदास के अनुवाद; बाङ्ला में श्री मदन चौधरी तथा श्री सतीश दासगुप्त की कृतियाँ और मराठी में पूना के श्री यादव शंकर की टीका। मानस की भाषा पर भी त्रिपाठी जी ने शोधपूर्ण दृष्टि से चिंतन किया और उसमें प्रयुक्त विदेशी शब्दों की सूची तैयार की। उन्होंने पता लगाया कि मानस में तुलसीदास जी ने तीन सौ से अधिक अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग किया है। भाषा-प्रयोग की दृष्टि से रामचरितमानस को एक आदर्श ग्रंथ मानते हुए त्रिपाठी जी कहते हैं कि तुलसी एक महान् समन्वयकारी लेखक थे, जिन्होंने सहस्रों शब्दों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा कर उनमें आपसी सम्बन्ध स्थापित कर दिया। वे लिखते हैं—"तुलसीदास जी की कविता की बदौलत लगभग नब्बे हज़ार संस्कृत शब्द देहात के अपढ़ आदमियों के घरों में भी जा बैठे हैं,···उसी तरह गाँवों के लगभग ३०-४० हज़ार शब्दों को सभ्य या शहराती समाज तक पहुँचा दिया, जिसने पढ़ी-लिखी देहात की अपढ़ जनता में विचारों की समानता स्थापित कर दी। मौके-मौके पर अरबी-फ़ारसी के शब्द भी डाल दिये गये हैं, जिनसे वे लोग आकर्षित हुए जो अरबी-फ़ारसी भी जानते थे। रामचरितमानस लोक-संग्रह का एक आदर्श बन गया है।" इस प्रकार त्रिपाठी जी ने अपने गहन अध्ययन के द्वारा गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन, उनकी काव्य-भाषा और और उनकी साहित्यिक गुणवत्ता की जो मीमांसा की थी, वह कल भी महत्त्वपूर्ण थी, और आज भी है।

रामचरितमानस को उन्होंने एक क्रांतिकारी काव्य के रूप में समाज में आदृत पाया था। गाँव-गाँव और घर-घर में प्रतिष्ठित इस काव्य में छंदों के संबंध में उन्होंने लिखा है कि गाँवों में असंख्य ऐसे लोग मिलेंगे जो पढ़े-लिखे नहीं हैं और जिन्हें संसार का अनुभव भी नहीं है। पर वे जीवन के भयानक वन में तुलसी की चौपाई या दोहे की पगडंडी पकड़े निर्भय चले जा रहे हैं। तुलसी-साहित्य की जो समीक्षा उन्होंने की है, उससे उनकी मर्मज्ञता का पता चलता है, साथ ही उनमें उद्धरणों की सहायता से अपने कथन की सत्यता प्रकट करने की क्षमता भी दिखायी पड़ती है। मानस में अनेक स्थलों पर 'सुराज' का स्मरण करनेवाले तुलसी में उन्होंने स्वराज्य की आतुरता के दर्शन किये थे।

टीका-साहित्य

त्रिपाठी जी के टीका-साहित्य के अंग हैं: भूषण ग्रंथावली (1914 ई.), अयोध्याकांड (1926 ई.), श्री रामचरितमानस (1935 ई.), जानकी मंगल (1935 ई.), पार्वती मंगल (1935 ई.), सुदामा चरित (1935 ई.) और शिवा-बावनी (1937 ई.)। इनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति है श्री रामचरितमानस (सटीक)। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'मानस को आधार बनाकर तथा उसमें एकाध सम्यक् संशोधन कर त्रिपाठी जी ने 1935 में मानस का शुद्ध पाठ तैयार किया था। लगभग दस वर्षों के परिश्रम के बाद उन्होंने यह सटीक ग्रन्थ लिखा और विद्वत्तापूर्ण भूमिका के साथ इसे प्रकाशित किया। महात्मा गाँधी और देश के चोटी के विद्वानों ने बारह सौ पृष्ठों में छपे इस बृहदाकार ग्रंथ की भूरि-भूरि प्रशंसा की। 5 मार्च 1936 ई. के अपने पत्र में गाँधी जी ने त्रिपाठी जी को लिखा—'भाई रामनरेश जी! आपका खत मिला है और सटीक मानस भी। आजकल आराम के दिनों में रोज आध घंटा रामायण सुनता हूँ। तीन दिन से आप ही की पुस्तक पढ़ता रहा हूँ। जो प्रसंग चल रहा है, सो तो पढ़ता ही हूँ और भूमिका से आरम्भ किया है। अब जीवनी चलती है। मेरी तो आपके अनुवाद पर श्रद्धा है इसलिए इस बारे में तो क्या लिखूँ।"

गोस्वामी तुलसीदास जी की जीवनी से संयुक्त इस ग्रंथ में त्रिपाठी जी की मौलिक चिन्तना से उद्भूत गम्भीर मीमांसा के दर्शन होते हैं। तुलसीदास के जीवन पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं, "सोरों (ऐटा) में एक भिक्षुक ब्राह्मण परिवार के घर एक ऐसे बालक का जन्म हुआ था, जिसने आरम्भ से ही दारुण दुःख झेले थे। पहले माता और फिर पिता का विछोह, फिर संसार की समर-भूमि में संघर्ष। दुःख को सहोदर की भाँति अपने हृदय से चिपकाये रहा था वह बालक रामबोला। एक दिन अपने तपोबल से उसने उस दुःख को सुख में परिणत कर दिया, उसे मानस के रूप में संसार को सौंप दिया।" त्रिपाठी जी कवि थे, बचपन से ही मानस के भक्त थे, तुलसी के सहचर थे। उन्होंने तुलसी को हृदय की आँखों से देखा-जाना था। तुलसी के संघर्षमय जीवन की झलक उन्हें उनके साहित्य में दिखायी दी थी। उन्होंने अनुभव किया कि तुलसीदास जी का जीवन-चरित दुःखों का मर्मबेधी इतिहास है। (पृ. 3) तुलसीदास के तपस्वी जीवन की झलक प्रस्तुत करते हुए त्रिपाठी जी उन्हें एक ऐसे वीर की संज्ञा से विभूषित करते हैं जो अन्तर-जगत के शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर कीर्ति के अधिकारी बनते हैं (पृ. 6)। तुलसीदास भक्त कवि थे। त्रिपाठी जी ने उनके कवि-रूप पर अधिक महत्त्व दिया। उनकी दृष्टि में भक्ति तुलसी का गौण विषय था, मूलतः वे कवि ही थे। भक्ति का प्रतिपादन भी तुलसी कवि की हैसियत ही से करते हैं। भूमिका में तुलसी के जीवन के कई पक्षों पर प्रकाश डालते हुए त्रिपाठी जी उनके कवि-रूप के भव्य

दर्शन भी कराते हैं।

त्रिपाठी जी की टीका उनकी मौलिक दृष्टि और अनुशीलनात्मक प्रवृत्ति का परिचय देती है। अपने समय की प्रचलित टीकाओं में उन्हें कुछ कमियाँ दिखाई दीं। विविध भाषाओं के टीकाकारों की रचनाओं में भाषा-भिन्नता के कारण अर्थ की सूक्ष्म अवगति न होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी। कुछ टीकाओं पर साम्प्रदायिकता का भी प्रभाव उन्होंने देखा। अतः हिन्दी में एक नयी टीका लिखने का सद्प्रयास उन्होंने किया। अपनी टीका की कई चौपाइयों में उन्होंने आवश्यक संशोधन भी किये, जिससे उसके सही अर्थ की पहचान हो सके। वास्तव में उनकी समस्त टीकाओं में मूल रचनाकारों के मर्म को सही रूप में समझाने का साधु सरल प्रयास है। 'शिवाबावनी' में उन्होंने लाला भगवानदीन सम्पादित ग्रन्थ का अनुसरण किया और उसके पहले एवं पचासवें छंद को स्फुट रचनाओं के अन्तर्गत रखा।

सम्पादन :

त्रिपाठी जी ने साहित्यिक ग्रन्थों और पत्रिकाओं दोनों का सम्पादन किया था। उनके द्वारा सम्पादित ग्रन्थ हैं: **कविता कौमुदी** (छः भागों में) **हिन्दी : भारतेंदु पूर्व** (1917 ई.) **हिन्दी : आधुनिक** (1920 ई.), **संस्कृत** (1924 ई.), **उर्दू** (1925 ई.), **ग्रामगीत** (1929 ई.) और **बाङ्ला** (1933 ई.); **सूरदास की विनय पत्रिका** (1917 ई.), **रहीम** (1920 ई.), **चिन्तामणि** (1925 ई.) तथा **सुकवि कौमुदी** (1931 ई.)।

'कविता कौमुदी' का प्रकाशन हिन्दी-जगत के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उपादेय रहा। उनके इस अनूठे साहित्यिक अनुष्ठान की देश-विदेश के अनेक विद्वानों ने सराहना की। 'कविता-कौमुदी' के प्रकाशन की अवधारणा के मूल में तीन बातें प्रमुख थीं; पहली, हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों के जीवन और काव्यों का परिचय पाठक समुदाय को हो; दूसरी, हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखन की दिशा में विनम्र योगदान हो सके तथा तीसरी, लेखक अपने इन प्रकाशनों द्वारा राष्ट्रीय भूमिका का निर्वाह कर सके। त्रिपाठी जी का विचार तो भारत की ही नहीं संसार की प्रत्येक साहित्य-सम्पन्न भाषा के कवियों का हिन्दी भाषा-भाषियों को परिचय देना था। इस आशय की घोषणा भी उन्होंने 'कविता कौमुदी' के पहले भाग में की थी कि संस्कृत, उर्दू, बाङ्ला, मराठी, गुजराती, तेलुगु भाषाओं के अतिरिक्त फ़ारसी, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओं के कवियों की श्रेष्ठ कविताओं पर भी परिचयात्मक खंड निकाले जाएँगे। परन्तु इतना विशाल साहित्य-संकलन वे नहीं कर पाये और उन्होंने हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, उर्दू और बाङ्ला से सम्बद्ध प्रकाशन ही हिन्दी-जगत को दिये। ग्राम-

जीवन और ग्राम-गीतों में बढ़ती हुई उनकी रुचि ने उनका सारा ध्यान, उनके जीवन का एक बहुत बड़ा काल-खण्ड और उनका समस्त श्रम एक अभूतपूर्व कार्य-सम्पादन में लगा दिया। कविता-कौमुदी का एक भाग उन्होंने देश-भर के चुने हुए ग्राम-गीतों के लिए सुरक्षित कर दिया।

हिन्दी तथा संस्कृत, उर्दू एवं बाङ्ला जैसी अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों और उनकी चुनी हुई कविताओं के संकलन-प्रकाशन के मूल में उनकी राष्ट्रीय भावना ही प्रमुख थी। आज जिस साहित्यिक और भाषायी आदान-प्रदान की बात हम करते हैं, उस आदान का शुभारम्भ तो उन्होंने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बीस-पच्चीस वर्ष पूर्व ही कर दिया था। संस्कृत, उर्दू और बाङ्ला की श्रेष्ठ कविताएँ हिन्दी-भाषियों तक पहुँचाकर उन्होंने हिन्दी की सार्वदेशिक भूमिका का क्षेत्र प्रशस्त किया था।

कविता-कौमुदी के पहले भाग में, जो उनके पाँच बरसों के अविराम परिश्रम का फल था, उन्होंने हिन्दी के आरम्भ काल से लेकर भारतेंदु हरिश्चन्द्र के पहले तक के कवियों की संक्षिप्त जीवनियाँ और उनकी उत्तम कविताएँ संगृहीत कीं। इसके प्रथम संस्करण में केवल बावन कवि थे जिनकी संख्या बढ़ाकर द्वितीय संस्करण में उन्नासी कर दी गयी। चंदबरदाई, विद्यापति, कबीर, रैदास, गुरु नानक, सूर, जायसी, तुलसी, दादूदयाल, रहीम, मलूकदास, रसखान, बिहारी, भूषण, गुरु गोविन्दसिंह, घन आनन्द, घाघ, गिरिधर कविराय, ठाकुर, बोधा, पद्माकर आदि रससिद्ध कवियों की ललित रचनाओं से समृद्ध इस महत्त्वपूर्ण कवि-परिचयात्मक ग्रन्थ को हिन्दी-संसार में व्यापक आदर मिला। कलकत्ता, पटना और काशी के विश्वविद्यालयीय पाठ्यक्रमों में इसे स्थान दिया गया। विश्ववंद्य कवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महामहोपाध्याय डॉ. गंगानाथ झा, जार्ज ग्रियर्सन, आक्सफ़ोर्ड विद्वान् जे. एन. फर्कुहर, आर. पी. ड्यूहर्स्ट प्रभृति विद्वानों ने त्रिपाठी जी की इस मूल्यवान् कृति की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। गुरुदेव ने सम्मति प्रकट करते हुए कहा था—"आपनार संकलित 'कविता-कौमुदी' ग्रन्थखानि पाठ करिया परितृप्ति लाभ करियाछि। हिन्दी कवितार ए रूप सुन्दर एवं धारावाहिक संग्रह आमि आर कोथाओ देखा नाई।" (बाङ्ला सम्वत् 1326, आषाढ़ 19)। अपने 19 जनवरी 1919 के पत्र में कविता-कौमुदी की प्रशंसा करते हुए इंगलैंड के जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा—"मैंने बड़े चाव से ग्रन्थ पढ़ा। हिन्दी-साहित्य के अध्ययन की दिशा में यह एक मूल्यवान प्रकाशन है। कितना अच्छा होता यदि यह ग्रन्थ पचास वर्ष पूर्व उपलब्ध रहता जब मैंने इस भाषा में अध्ययन आरम्भ किया था।"

इस पुस्तक की प्रस्तावना राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने लिखी थी। पुस्तक के अन्त में 'कौमुदी कुंज' शीर्षक खंड में लेखक ने कुछेक घनाक्षरी, सवैये, छप्पय, दोहे, बरवै पदों के अतिरिक्त पहेलियाँ, मुकरियाँ और लोकोक्तियाँ भी समाविष्ट कीं।

कविता-कौमुदी के दूसरे भाग में भारतेंदु हरिश्चन्द्र से लेकर सुभद्रा कुमारी चौहान तक, कुल उनचास कवियों और उनकी प्रतिनिधि कविताओं को उन्होंने स्थान दिया। यह ग्रन्थ उन्होंने हिन्दी-प्रचार के प्रमुख उद्योगी सेठ जमनालाल बजाज को समर्पित किया था। 'कौमुदी-कुंज' खण्ड में भी लगभग पचास कवियों की चुनी हुई कविताएँ संकलित हैं। आरम्भ में खड़ी बोली की कविता के परिचय में हिन्दी के प्रमुख कवियों की कृतियों की समालोचना भी दे दी गई है। खड़ी बोली के कवियों में राष्ट्रीयता का भाव उन्होंने सर्वत्र पाया था। यहाँ तक की ईश-प्रार्थनाओं में भी तत्कालीन कवि राष्ट्रहित का ही चिन्तन किया करते थे। यथा—

(अ) ऐसी कृपा प्रकाश दिखा दें, अपनी दशा सुधारें।
आत्म-त्याग का मार्ग पकड़ लें देश-प्रेम उर धारें॥
विस्तारें जातीय एकता, भेद विरोध बिसारें।
भारतमाता की जय बोलें, जलथल नभ गुंजारें॥
(बदरीनाथ भट्ट, प्रार्थना, पृ. 543)

(आ) सबको स्वतन्त्रता प्यारी हो, निज स्वत्व सम्पदा सारी हो।
स्वाधीन सभी नर-नारी हों, सब चार वर्ग अधिकारी हों।
दासत्व देश से न्यारा हो।
हरि! हिन्द प्राण से प्यारा हो।
(विद्याभूषण 'विभु', शुभाषा, पृ. 664)

कविता-कौमुदी के संस्कृत खण्ड की रचनाओं के संकलन-सम्पादन में शारदा-सम्पादक साहित्याचार्य पं. चन्द्रशेखर शास्त्री ने सहयोग किया था। आरम्भ में संस्कृत-साहित्य का इतिहास और अन्त में 'कौमुदी-कुंज' के अन्तर्गत रस, पहेली, नायिका-भेद आदि विषयों से सम्बन्धित संस्कृत के चुने हुए श्लोक भी लेखक ने दे दिये हैं। संस्कृत की तरह ही कविता-कौमुदी (बाङ्ला) की कविताओं के संकलन में त्रिपाठी जी ने पं. कृपानाथ मिश्र का सहयोग लिया था। 'कविता-कौमुदी' के उर्दू भाग में उन्होंने उर्दू शायरों और उनकी शायरी का परिचय देने का पहली बार प्रयास किया था। आरम्भ में उर्दू भाषा के इतिहास पर उनकी आकर्षक शैली में लिखी विस्तृत भूमिका भी है जिसे पढ़कर सुप्रसिद्ध मनीषी डॉ. सुनीति-कुमार चटर्जी ने त्रिपाठी जी को लिखा था कि मैंने किसी भी भारतीय भाषा पर इतना विलक्षण अध्ययन नहीं देखा, जैसा उर्दू कविता की विशिष्टता और सामान्य चेतना पर आपका है। पुस्तक की प्रस्तावना के लेखक थे लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् डॉ. अमरनाथ झा।

कविता-कौमुदी (ग्राम-गीत) का हिन्दी-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इस अद्वितीय ग्रन्थ में त्रिपाठी जी भारत की ग्राम्य संस्कृति और ग्राम-गीतों के माध्यम से लोक-जीवन की अद्‌भुत छटा के दर्शन कराते हैं। ग्राम-गीतों के संग्रह का कष्ट-साध्य कार्य-सम्पादन उनकी बरसों की अनवरत साधना का परिणाम था। उन्हें गाँवों के कंठस्थ साहित्य में केवल काव्यगत रमणीयता ही नहीं दिखाई दी, अपितु समाज के लिए कई उपयोगी विषय भी निहित दिखाई दिये। उन्होंने अनुभव किया कि कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक समग्र भारत की आत्मा का स्वर ग्राम-गीतों के माध्यम से फूटा है। उन्होंने गाँव-गाँव घूमकर और देहातियों के बीच रहकर उनके जीवन मे गुँथे हुए गीत-कुसुमों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया और 'कविता-कौमुदी' के पाँचवें भाग में 1929 ई. में प्रकाशित किया।

'सूरदास की विनय-पत्रिका' में उन्होंने विभिन्न रागों पर आधारित कवि के एक सौ पाँच पद चुनकर रखे। सूरसागर के प्रथम स्कंध के कुछ भजनों का संग्रह लोगों में 'सूरदास की विनय-पत्रिका' के नाम से प्रसिद्ध था। त्रिपाठी जी ने इसी नाम से उक्त पुस्तक का सम्पादन किया, जिसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 1917 ई. में प्रकाशित किया। उनके द्वारा सम्पादित पुस्तक 'रहीम' भी है, जिसमें उन्होंने हिन्दी के यशस्वी कवि अब्दुररहीम खानखाना की चुनी हुई रचनाओं को जीवन-परिचय के साथ प्रकाशित करवाया। त्रिपाठी जी ने इस कार्य-सम्पादन के लिए कुछ आधारभूत कृतियों से सहायता ली। मिश्र बन्धुओं के पास रहीम के दो सौ बारह दोहों की एक हस्तलिखित प्रति थी जो बाद में वियोगी हरि द्वारा सम्पादित होकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा, प्रकाशित की गयी। काशी के भार्गव पुस्तकालय द्वारा 1918 ई. में प्रकाशित 201 दोहों, 3 सवैयों, 1 कवित्त और 3 सोरठों वाली 'रहीम शतक' नामक एक पुस्तक भी उनके हाथ लगी, जिसमें रहीम विरचित 'बरवै नायिका भेद' भी पूरा समाविष्ट था। उन्होंने नवाब खानखाना कृत 'खेट कौतुकजातकम्' भी देखी। इन सबके आधार पर त्रिपाठी जी ने 'रहीम' का सम्पादन किया। अरबी, फ़ारसी, संस्कृत और हिन्दी के विद्वान रहीम के व्यक्तित्व और कृतित्व की विशेषताओं का सुन्दर परिचय इस कृति में उपलब्ध होता है। 'चिन्तामणि' (1925) में तुलसी, सूर, रैदास, कबीर, मीरा, मलूकदास और पद्माकर के चुने हुए चौदह पद संकलित हैं। इन पदों को त्रिपाठी जी ने अपनी और अपने दो साहित्यिक मित्रों, सरस्वती-सम्पादक श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और दियराराज के कुमार कौशलेन्द्र प्रताप साही की रुचि से संकलित-प्रकाशित किया था। इनमें तुलसी के छह, सूर के तीन, और शेष कवियों के एक-एक पद संगृहीत हैं। 'सुकवि विनोद' में त्रिपाठी जी ने हिन्दी के चुने हुए पुराने और नये कवियों का परिचय प्रस्तुत किया है जो अपने समय और प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि माने जाते थे।

त्रिपाठी जी ने 'कवि-कौमुदी,' 'बानर' और 'उद्योग' नामक पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया था। 'कवि-कौमुदी' का प्रकाशन उन्होंने चैत्र, 1981 विक्रमी से फाल्गुन 1981 वि. तक किया। प्रकाशन के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए त्रिपाठी जी लिखते हैं— "खड़ी बोली में कविता देवी के स्वागत के लिए तैयारियाँ हो रही हैं। कवियों में मतभेद न होने देने के लिए एक ऐसे स्थान की आवश्यकता थी, जहाँ सब कवि-जन एकत्र होकर एक-दूसरे की सुन लिया करें। इसीलिए हमने खड़ी बोली के असर में 'कवि-कौमुदी' नामक एक क्लब खोल दिया है। उसमें बैठकर कविगण वाद-विवाद किया करें और फिर एकमत होकर कोमल-कांत पदावली से कविता देवी का स्वागत करें।" यह पत्रिका कविता और कविता सम्बन्धी लेखों को अधिक महत्त्व और स्थान देती थी। वियोगी हरि, 'हरिऔध', पं. नाथूराम शंकर शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी, ठाकुर गोपालशरण सिंह, रूपनारायण पांडेय, पं. परशुराम चतुर्वेदी प्रभृति कवि-लेखकों का रचनात्मक योगदान इसे प्राप्त हुआ था। पारिवारिक परिस्थितियों के कारण त्रिपाठी जी इसे एक वर्ष से अधिक नहीं चला पाये। 'बानर' बच्चों के लिए प्रकाशित मासिक पत्रिका थी। लगभग चालीस पृष्ठों की इस चित्ताकर्षक पत्रिका में बच्चों के लिए कविताएँ, कहानियाँ और अन्य ज्ञानवर्धक बातें सचित्र छपा करती थीं। 'बानर' (अक्तूबर 1931) के अंक में प्रकाशित एक रचना की बानगी देखिए—

कुल में कौन सपूत बनेगा, तन-मन से मजबूत बनेगा,
बानर वीर, बानर वीर !
दुखियों का दुख कौन सुनेगा, सेवा का सुख कौन चुनेगा,
बानर वीर, बानर वीर !

कालाकांकर के श्री सुरेश सिंह और त्रिपाठी जी के सुपुत्र सुकवि आनन्द कुमार त्रिपाठी भी इसके संपादकों में थे। आर्थिक घाटा उठाकर भी त्रिपाठी जी ने कुछ बरसों तक यह पत्रिका चलायी। सुलतानपुर से 'उद्योग' नामक पत्रिका भी उन्होंने कुछ समय तक निकाली थी।

संकलन (सूक्ति)

संस्कृत को त्रिपाठी जी भारत की आत्मा मानते थे। संस्कृत के प्रति श्रद्धा उन्हें विरासत में मिली थी। उनके पिता और चाचा दोनों ही संस्कृत के विद्वान थे। त्रिपाठी जी ने भी संस्कृत-साहित्य का निष्ठापूर्वक अध्ययन किया था। संस्कृत के ज्ञान को वे व्यक्तित्व के विकास का आवश्यक आधार मानते थे। अपने स्नेहपात्र डॉ. बैजनाथ सिंह को संस्कृत के अध्ययन की प्रेरणा देते हुए उन्होंने लिखा था कि संस्कृत के ज्ञान के बिना भारतीय विद्यार्थी बिना पतवार की नौका बन जाता है, इसमें उसके व्यक्तित्व को दिशा नहीं मिलती और उसके चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया

कुंठित हो जाती है। वे बालकों को और युवकों को संस्कृत की शिक्षा दिये जाने के पक्षपाती थे। उनका मंतव्य था कि संस्कृत में नीति के श्लोक बहुत हैं, जिनसे मनुष्य में व्यवहार-बुद्धि आती है, अच्छे बुरे कामों का अंतर मालूम होता है, उत्तम, निर्दोष और निर्भय जीवन बिताने के लिए अन्तर से प्रेरणा मिलती है। तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली में नीति की शिक्षा गौण हो गयी थी इसका उन्होंने अनुभव किया था। अतः नैतिक शिक्षा की उपयोगिता को ध्यान में रखकर उन्होंने संस्कृत-साहित्य एवं श्रीरामचरितमानस से विविध विषयों से सम्बन्धित सुभाषितों का संचयन किया और उन्हें छात्र-समुदाय के लाभार्थ प्रकाशित किया। सूक्तियों से सम्बन्धित उनकी कृतियाँ हैं—**नीतिशिक्षावली** (1915 ई.), **नीति रत्नमाला** (1926 ई.), **नीति के श्लोक** (1939 ई.), **नीति रत्नावली** (1954 ई.) और **मानस की सूक्तियाँ** (1954 ई.)।

संस्कृत भाषा में सूक्ति-मणियों की अनन्त संपदा है। प्राचीन काल के मनीषियों ने सामाजिक जीवन के हर प्रसंग और पहलू को ध्यान में रखकर अनुभव की ज्योति से जगमगाते श्लोक-रत्नों की भेंट मानव-जाति को दी है। अँधेरे में दीपक का काम करनेवाले ये सुभाषित कितने अनमोल हैं, यह अनुभव करके ही जाना जा सकता है। मानस तो मनुष्य के जीवन को उच्च, पवित्र और आदर्श बनानेवाले रत्नों का आकर है ही। 'एकता' के महत्त्व को दर्शानेवाली इस सूक्ति का उल्लेख यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा—

अल्पानामपि वस्तुनां संहतिः कार्य साधिका।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः॥

थोड़ी वस्तुओं का भी यदि समूह हो तो कार्य-सिद्धि सम्भव है। जैसे बहुत-सी घास इकट्ठी करके बनाये रस्से से मतवाले हाथी बाँधे जाते हैं।

भाषा

त्रिपाठी जी हिन्दी के अनन्य भक्त थे। राष्ट्रभाषा के प्रचार में अग्रणी थे। हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार के क्षेत्र में उनका प्रबल उत्साह देखकर ही महात्मा गाँधी ने 1919 ई. में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बम्बई अधिवेशन के अवसर पर उन्हें सम्मेलन का प्रचार मंत्री बनाया था और उन्हें दक्षिण भारत में राष्ट्रभाषा के प्रचार-कार्य का ज़िम्मा सौंपा था। 1919 तक त्रिपाठी जी साहित्य-जगत में स्थापित हो चुके थे। उनकी लगभग बीस कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी थीं। कवि, कथाकार, जीवनी-लेखक, बाल-साहित्य-प्रणेता और टीकाकार के रूप में वे हिन्दी-जगत में प्रतिष्ठित हो चुके थे। समग्र राष्ट्र की भाषा के रूप में हिन्दी के विकास का द्वार तो भारतेन्दु खोल ही चुके थे, गाँधी जी का आदेश पाकर इस पुनीत राष्ट्रीय यज्ञ में पुरोधा बनकर त्रिपाठी जी भी प्रकट हुए। दक्षिण भारत हिन्दी

प्रचार सभा के विकास-कार्यों में उनका योगदान कभी भुलाया नहीं जा सकता।

त्रिपाठी जी हिन्दी के भविष्य के प्रति पूरी तरह आश्वस्त थे। आज से सत्तर वर्ष पूर्व 1917 ई. में ही **कविता-कौमुदी** (प्रथम भाग) में उन्होंने आशा व्यक्त की थी कि हिन्दी-साहित्य का बढ़ता हुआ वह वृक्ष एक दिन कैलाश से कन्याकुमारी तक, अटक से कटक तक अपनी सुखद शीतल छाया से कोटि-कोटि भारतवासियों को शांति और सुख प्रदान करेगा। सारे देश में एक भाषा के प्रचार से हममें एक राष्ट्रीयता जाग्रत होगी; पारस्परिक प्रेम, एक्य और बंधुत्व की वृद्धि होगी और घनिष्ठता और सहानुभूति का भाव पुष्ट होगा। आज हिन्दी उन्हीं की आशाओं के अनुरूप अपनी महनीय भूमिका निभा रही है। उन्होंने अनुभव किया था कि हिन्दी जीवंत भाषा है। उसकी ग्राहिका शक्ति बड़ी प्रबल है। उसने अरबी, फ़ारसी और तुर्की भाषाओं के हज़ारों शब्द ग्रहण कर लिये हैं, अब अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों को भी वह चुन-चुनकर अपनाती जा रही है। विदेशी ही नहीं, देशी भाषाओं के अनेक शब्द, मुहावरे आदि भी उसके अपने बनते जा रहे हैं।

त्रिपाठी जी ने हिन्दी-उर्दू के सम्बन्धों पर भी विचार किया। वे दोनों में किसी प्रकार का पार्थक्य नही देखते थे। उर्दू को 'मुसलमानी हिन्दी' नाम उन्होंने ही दिया था। अपने एक संस्मरण में डॉ. उदयनारायण तिवारी ने लिखा है कि उनके इस नामकरण पर प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या तो इतने मुग्ध थे कि अपने अनेक व्याख्यानों में वे इसका उल्लेख किया करते थे। कुछ विदेशी शब्दों के कारण हिन्दी-उर्दू को भिन्न भाषाएँ मानना उनकी दृष्टि में ठीक नहीं था। उन्होंने मुसलमानों द्वारा किये गये भाषा-प्रचार की अहमियत को स्वीकार किया। अपने अनुभव के आधार पर वे लिखते हैं —"उत्तर भारत से जितने मुसलमान दक्षिण गये, वे सब अपनी जबान भी गोलकुंडा और बीजापुर तक साथ ले गये, जो हिन्दी थी; जैसा कि उस समय के मुसलमान कवियों ने कहा है। आज भी मद्रास में जितने मुसलमान हैं, उनमें से अधिकांश दिल्ली की पुरानी ज़बान से वाक़िफ़ हैं, जिसे उनके पुरखे दक्षिण ले गये थे। मैं दो-तीन बार दक्षिण भारत का भ्रमण कर आया हूँ। मेरा निजी अनुभव है कि जहाँ-जहाँ भाषा की कठिनाई मेरे सामने आयी, रास्ते में मिलनेवाले मुसलमानों ने उसे हल किया।" (**उर्दू जबान का संक्षिप्त इतिहास**, पृ. 7-8) इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने गाँधी जी के हिन्दुस्तानी आंदोलन का समर्थन किया और **हिन्दी-हिन्दुस्तानी** (1932 ई.) नामक पुस्तक की रचना की, जो मद्रास की दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा द्वारा प्रकाशित हुई। त्रिपाठी जी को हिन्दुस्तानी का समर्थक देखकर कुछ विद्वान अप्रसन्न भी हुए थे, परन्तु उनके लिए हिन्दी या हिन्दुस्तानी दोनों एक भाषा के दो नाम थे। उन्होंने हिन्दी के लिए ही जीवन पर साधना की थी, उसे कोई कैसे भुला सकता था।

भाषा के साथ लिपि का भी महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध होता है। हिन्दुस्तानी का

प्रचार गाँधीजी उर्दू लिपि के माध्यम से करवाना चाहते थे, परन्तु त्रिपाठी जी इससे सहमत नहीं थे। मई 1946 में गाँधीजी एक सप्ताह के लिए मसूरी गये हुए थे। वहाँ पर त्रिपाठी जी ने उनसे भेंट की और हिन्दुस्तानी के प्रचार-प्रसार के सम्बन्ध में उनसे बातें कीं। चर्चा के दौरान त्रिपाठी जी ने गाँधी जी को समझाया कि हर कांग्रेसी के लिए उर्दू लिपि सीखने का आपका नियम हिन्दुस्तानी के प्रचार में सहायक न होगा। यदि ये पुस्तकें नागरी लिपि में छपतीं, तो हिन्दी वाले भी पढ़ते और उर्दू के मुहावरों और अरबी-फ़ारसी के प्रचलित शब्दों की जानकारी सहज में प्राप्त कर लेते। ज़रूरत इस बात की है कि भारत की प्रत्येक लिपि में हिन्दुस्तानी की पुस्तकें मुद्रित हों ताकि भिन्न-भिन्न प्रदेशों के लोग हिन्दुस्तानी में परस्पर बातचीत कर सकें। गाँधीजी को पंडित जी की यह बात सारयुक्त मालूम हुई और उन्होंने त्रिपाठी जी से कहा कि अपने विचार लेखबद्ध करके उन्हें दे दें। अपनी आत्म-कथा में गाँधीजी के संस्मरणों में त्रिपाठी जी लिखते हैं,

> "मैंने अगले दिन लिखकर दिया, तो 'हरिजन सेवक' में गाँधी जी की एक टिप्पणी के साथप्रकाशित हुआ। और बाद में सुना कि मेरी मुलाकात के बाद ही गाँधीजी ने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा को तार दिलाया कि दक्षिण भारत की प्रत्येक लिपि में हिन्दुस्तानी की पुस्तकें छपाई जायें। यह सुनकर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि कोई बात ठीक समझ में आ जाने के बाद वे उसे कार्य रूप में परिणत कर देने में देरी नहीं लगाते थे।"

इस प्रकार हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के प्रचार के क्षेत्र में त्रिपाठी जी का योगदान अमूल्य ही माना जाएगा। अंग्रेज़ी शिक्षा के दुष्परिणामों से वे बहुत दुःखी थे। पाश्चात्य शिक्षा ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी थी कि जिससे लोग अपनी ही भूमि से कटने लगे तथा विचार और व्यवहार से विदेशी दीखने लगे थे। त्रिपाठी जी ने अनुभव किया कि "हमारी आँखें तो यही हैं, किन्तु जान पड़ता है, हम योरप में जाग रहे हैं। हमारे कान तो यही हैं, किन्तु जान पड़ता है, हम योरप ही की आवाज़ सुन सकते हैं। हमारा मन तो यही है; किन्तु जान पड़ता है, हम उससे केवल पश्चिम ही का स्वप्न देख सकते हैं। बात क्या है? इतनी आसानी से हमें इतनी दूर कौन उठा ले गया?" भारतीय भाषाओं की उपेक्षा से वे चिंतित थे, पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति से क्षुब्ध। इसीलिए, उन्होंने हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं की महिमा-महत्ता का प्रतिपादन किया।

हिन्दी के प्रचार के लिए उन्होंने अपना लेखकीय और प्रकाशकीय दायित्व कुशलता से निभाया। उनके द्वारा प्रकाशित रीडरों का प्रचार उत्तर भारत में ही नहीं, दक्षिण भारत में भी सर्वत्र हुआ था। इस दिशा में उन्होंने जो महत्त्वपूर्ण अन्य कृतियाँ प्रकाशित कीं, वे हैं: **पद्य प्रबोध** (1913 ई.), **हिन्दी रचना** (1917 ई.), **हिन्दी शब्द कल्पद्रुम** (1925 ई.), **हिन्दी पत्र शिक्षक** (1932 ई.),

हिन्दी-हिन्दुस्तानी (1932 ई.), **हिन्दुस्तानी कोश** (1933 ई.) और **हिन्दी मुहावरे** (1953 ई.)। इनमें से प्रथम दो हिन्दी की छंद-रचना पर प्रकाश डालती हैं।

त्रिपाठी जी की विशेषता यह है कि वे स्वनिर्मित खड़ी बोली के छंदों से छात्रों को पद्य-रचना की कला सिखाते हैं, जैसे 'सबकी उन्नति में सखा अपनी उन्नति मान। जिनमें प्रेम न जाति का, वे नर श्वान समान।' (पद्य प्रबोध) और 'तुम अपने सुख के प्रबन्ध के हो न पूर्ण अधिकारी, यह मनुष्यता पर कलंक है, हे प्रिय बन्धु तुम्हारी। पराधीन रहकर अपना सुख-शोक न कह सकता है, यह अपमान जगत में केवल पशु ही सह सकता है (हिन्दी पद्य रचना)।' दोहे और ललित पद छंदों को देश-भक्तिपूर्ण भावों से भरे मुक्तकों के माध्यम से समझाने का उनका यह ढंग वस्तुतः अनूठा है। 'हिन्दी शब्द कल्पद्रुम' और 'हिन्दुस्तानी कोश', जिनकी पृष्ठ संख्या क्रमशः 610 और 708 हैं, में उन्होंने हिन्दी के तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों के अतिरिक्त भाषा में प्रयुक्त होनेवाले अरबी, फ़ारसी, उर्दू, अंग्रेज़ी के शब्द भी समाविष्ट किये। 'हिन्दी मुहावरे' नामक पुस्तक में उन्होंने कुल 1043 मुहावरे अर्थ-प्रयोग सहित संकलित किये हैं। त्रिपाठी जी मुहावरों को भाषा के ऐसे रत्न मानते थे जो अपनी चमक से उसे जीवंत और विलक्षण बनाते हैं। अनुभवों का निचोड़ मुहावरों की प्राण-शक्ति हुआ करता है। 'अंगूठा दिखाना' मुहावरे के उद्भव के बारे में त्रिपाठी जी का मंतव्य है कि अंग्रेज़ी राज्य में कच्चे रेशम के नरे भरने वालों पर इतना अत्याचार होता था कि उनमें से कई लोग इस आतंक से बचने के लिए अपना अँगूठा कटवा लेते थे। वे कहते हैं कि "मेरा अनुमान है कि अँगूठा दिखाने का मुहावरा तभी से चल निकला है। पहले जब कंपनी का कोई गुमाश्ता जुलाहे के पास रेशम का नरा भरने के लिए जाता होगा, तब वेचारा जुलाहा पहले से काटे हुए अँगूठे को दिखाकर छुट्टी पा जाता होगा। अँगूठा दिखाने की प्रथा इतनी प्रसिद्ध हो गयी कि उसका प्रयोग किसी काम के इन्कार करने पर मुहावरे की तरह होने लगा है। जैसे, मैंने उसे अँगूठा दिखा दिया, अर्थात् काम करने से इन्कार किया।" त्रिपाठी जी ने पुस्तक के आरम्भ में अपनी प्रस्तावना में मुहावरों के स्वरूप, और उनके प्रयोग पर उपयोगी विचार व्यक्त किये हैं।

ज्ञान-विज्ञान का साहित्य

त्रिपाठी जी ने केवल साहित्यिक कृतियाँ ही नहीं, विविध विषयों पर ज्ञानात्मक पुस्तकें भी लिखीं। वे दूरदर्शी साहित्य-निर्माता थे। हिन्दी के सर्वतो-मुखी विकास के शुभाकांक्षी रचनाकार थे। ज्ञान-विज्ञान के अनेक विषयों पर उपादेय साहित्य रचकर उन्होंने राष्ट्रभाषा को सामर्थ्य प्रदान किया। साहित्येतर विषयों में लिखने का आह्वान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पहले ही कर चुके थे—"विविध

कला, शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार। सब देसन से लै करहु, भाषा माँहि प्रचार।।"

तदनंतर बाबू श्यामसुन्दर दास और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी हिन्दी में ज्ञान-विज्ञान के साहित्य-प्रणयन को प्रोत्साहित किया था। 'सरस्वती' के माध्यम से हिन्दी में ऐसे पचासों लेखक प्रकाश में आये, जिन्होंने साहित्येतर विषयों को हिन्दी में प्रस्तुत किया। इसी परम्परा में त्रिपाठी जी का नाम भी आदर के साथ लिया जाता है। पुराण, इतिहास, ग्राम-जीवन, राजनीति, संगीत, खगोल, स्वास्थ्य, यात्रा, आचरण-शास्त्र आदि विषयों पर उन्होंने कई पुस्तकें, मौलिक और अनूदित, प्रकाशित कीं।

ज्ञान-विज्ञान के साहित्य के अंतर्गत उनकी उल्लेख्य रचनाएँ हैं: संस्कृति विषयक— भारतीय कथा अर्थात् हिन्दी महाभारत' (1915 ई.) और 'मानस के पाँच पात्र' (1954 ई.); ग्राम-जीवन विषयक—'मिट्टी के सुखदायक घर और नमूने का गाँव' (1936 ई.) और 'किसानों के काम की बातें' (1938 ई.); राजनीति विषयक—'देश का दुखी अंग' (1921 ई.), यात्रा विषयक—'उत्तरी ध्रुव की भयानक यात्रा' (1920 ई.), आचरण विषयक—'अंग्रेजी शिष्टाचार' (1931 ई.), संगीत विषयक—'अभिनव संगीत' (1934 ई.), विज्ञान विषयक—'आकाश की बातें' (1915 ई.), स्वास्थ्य विषयक—'योग के आसन' (1940 ई.) तथा अनुवाद—'कौन जाग रहा है' (अनुपलब्ध) और 'इतना तो जानो' (1922 ई.)।

'भारतीय कथा अर्थात् हिन्दी महाभारत', जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, महाभारत का हिन्दी रूपांतरण है। भारतीय संस्कृति का भव्यतम रूप प्रकट करने वाली और 'न हि मानुषात्श्रेष्ठतरं हि किंचित्' के उद्घोष द्वारा मानव की महिमा गुणगान करनेवाली इस महान पौराणिक कथा को अपने फतेहपुर-प्रवास के दिनों में त्रिपाठी जी ने सरल और आकर्षक भाषा-शैली में हिन्दी में उतारा था, जिसका प्रकाशन रामजीलाल शर्मा (हिन्दी प्रेस, प्रयाग) ने किया था। इसकी प्रस्तुति इतने सुन्दर ढंग से हुई कि ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम के पाठ्यक्रम में इसे स्थान दिया गया। 'मानस के पाँच पात्र' में पौराणिक चरित्रों की तेजस्वी झाँकी प्रस्तुत की गयी है।

अपनी ग्राम-जीवन सम्बन्धी पुस्तक 'मिट्टी के सुखदायक घर और नमूने का गाँव' में उन्होंने अपने भारत-भ्रमण के अनुभव के आधार पर सुन्दर और स्वास्थ्य-प्रद घरों की संरचना पर सचित्र प्रकाश डाला है। गाँवों में मिट्टी के सुखदायक घर बनाने की विधि बतानेवाली यह पहली पुस्तक थी, जो उन्होंने सरल बोल-चाल की भाषा में लिखी। गाँवों की दशा सुधारने की यों तो सरकार ने कई योजनाएँ बना रखी थीं, परन्तु ऐसी किसी योजना का अभाव था जो गाँव वालों के

घरों को नया रूप दे सकें। त्रिपाठी जी ने इस ओर पहल की। ज़मीन के चुनाव से लेकर घर के पूर्ण ढाँचे तक की जो विधि उन्होंने बतायी है, उससे उनके गृह-निर्माण-कौशल का परिचय मिलता है। 126 पृष्ठों की इस पुस्तक में उन्होंने जर्मनी, इंगलैंड, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, मलाया आदि देशों के गाँवों के घरों के चित्र, आदर्श घर के विभिन्न भागों के नक़शे और नमूने के घरों की आकृतियाँ दी हैं। आज की महानगरीय इमारतों को पेड़-पौधों और लता-पुष्पों से रहित देखकर उन्हें दुःख होता था। वे आँगन की फुलवाड़ी को घर का आवश्यक अंग मानते थे। फुलवाड़ी तो दूर, गमलों तक का अभाव देखकर उन्होंने लिखा, "जिस क़ौम के देवताओं के और राजाओं के चित्रों में उनके हाथ में फूल का चित्र बनाकर फूलों के प्रति इतना प्रेम प्रकट किया गया था, आज उसके घरों में फूल कभी साल में एक-दो बार, किसी पूजा-पाठ के दिन ही नज़र आते हैं। ऐसा भयानक पतन, शोभा-शृंगार की ऐसी उपेक्षा, भगवान अब किसी कौम को न दें।" (पृ. 2) अपनी एक अन्य पुस्तक 'किसानों के काम की बातें' में उन्होंने किसानों के लिए कई उपयोगी विषयों का विवेचन किया। 'हल, मक्का खेती, फुलवाड़ी, बाग के कीड़े, मड़ाई और ओसाई, फसलों की बीमारियाँ और उसके इलाज' आदि विषयों पर उन्होंने सरल भाषा में प्रकाश डाला है। कृषि-विज्ञान पर भी उनकी जबरदस्त पकड़ थी।

'देश का दुखी अंग' पुस्तक भारतीय कृषकों की करुण कहानी तो कहती ही है, साथ ही उसमें राजनीतिक चेतना जगाने का प्रयत्न भी करती है। किसानों की दुर्दशा के चित्र के साथ-साथ उनके दुःखों के निवारण का उपाय बतानेवाली इस पुस्तक का प्रकाशन पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की सस्ती हिन्दी पुस्तकमाला (कानपुर) के अंतर्गत प्रथम पुष्प के रूप में 1921 में हुआ था। उन दिनों त्रिपाठी जी जेल में थे। किसानों का दुख कैसे दूर होगा, सरकार, ज़मींदार, पुलिस, पटवारी, महाजन, अदालत, वकील और दुख दूर करने के उपाय (सत्याग्रह और असहयोग) आदि शीर्षकों से उन्होंने विषय का प्रभावी ढंग से प्रतिपादन किया है। आरम्भ में उन्होंने कृषि-माहात्म्य बतानेवाली एक कविता—'जगत के जीवन-प्राण किसान' दी है, जो अपने समय में काफ़ी लोकप्रिय हुई थी। शासन और पूँजीपतियों के अत्याचारों से त्रस्त किसानों का उन्होंने सत्याग्रह और असहयोग के मार्ग पर चलने के लिए आह्वान किया। त्रिपाठी जी ने किसानों के हितों के लिए अनेक बार संघर्ष किया था। वे किसानों को देश का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समुदाय मानते थे। इस विशाल समाज की उपेक्षा और उसके प्रति होनेवाली अनीति उन्हें असह्य थी। उन्होंने गाँधीजी के सत्याग्रह और असहयोग का अर्थ समझाया और किसानों को अन्याय के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा दी।

एक अंग्रेजी पुस्तक के आधार पर त्रिपाठी जी ने 'उत्तरी ध्रुव की भयानक

यात्रा' लिखी जिसे मिस्टर हाल ने बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स (इलाहाबाद) से प्रकाशित किया। इस पुस्तक की रचना बिसाऊ (जयपुर) के सब-पोस्टमास्टर श्री रामनारायण जी की सहायता से उन्होंने 1914-15 में ही पूरी कर ली थी, परन्तु प्रकाशन 1920 में ही संभव हो सका। इस पुस्तक में यूरोप के लोगों की उत्तरीध्रुव की साहसिक यात्रा का वर्णन है। ह्वेल मछलियों का शिकार, हिम-खंडों का सामना, सफ़ेद रीछों का मुकाबला और दरियाई घोड़ों का अन्त करते हुए अपनी मंज़िल तक पहुँचनेवाले उत्साही वीरों की यात्रा का उन्होंने रोमांचकारी वृत्तांत लिखा है। वस्तुतः संकल्प, साहस, धैर्य, पुरुषार्थ और विजय की प्रेरक कहानी है, उत्तरी ध्रुव की यात्रा।

आचरण संबंधी कुछ अंग्रेज़ी पुस्तकों का अध्ययन करके त्रिपाठी जी ने अंग्रेज़ी शिष्टाचार (इंगलिश एटिकेट इन हिंदी) नामक एक पुस्तक तैयार की, जिसका प्रकाशन मार्च 1931 ई. में उन्होंने हिंदी मंदिर (प्रयाग) से किया। आधुनिक समाज का शिष्टाचार सिखानेवाली हिन्दी की यह विशिष्ट पुस्तक उन्होंने सामान्य जन के उपयोगार्थ लिखी। अंग्रेज़ी समाज के रहन-सहन, चाल-ढाल, बोली-बानी, रस्म-रिवाज़, खान-पान, रंग-ढंग, तौर-तरीक़े, उठ-बैठ, लोकाचार, तहज़ीब, आमोद-प्रमोद आदि बातों की जानकारी इसमें दी गयी है। 156 पृष्ठों की इस पुस्तक के कुछ महत्त्वपूर्ण अध्याय हैं—पहनावा, मिलने जाने और कार्ड देने की शिष्टता, पहुँचने का समय, एट होम और स्वागत, ब्रिज पार्टियाँ, नाचों के प्राईवेट उत्सव, क्लब, मैदान के खेल सम्बन्धी शिष्टाचार, पिकनिक और नदी के सैर की पार्टियाँ, गार्डन पार्टियाँ (उद्यान भोज), चिट्ठी-पत्री, पेशे सम्बन्धी शिष्टाचार आदि। अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं—"संसार की स्वतन्त्र जातियों के बराबर बैठने का हौसला रखनेवाले भारतीयों को प्रत्येक समाज के क़ायदे-क़ानून की जानकारी बहुत ज़रूरी है। जो लोग समाज में आने-जाने के नियम नहीं जानते, वे असभ्य गिने जाते हैं और साथ लोगों की नजरों में गिर जाते हैं। इस पुस्तक द्वारा बिना विलायत गये ही अंग्रेज़ों की रीति का ज्ञान हो जाता है।" आधुनिक समाज की व्यावहारिक जानकारी देनेवाली इस पुस्तक से त्रिपाठी जी के उदार दृष्टिकोण का पता चलता है।

साबरमती के संगीत-विद्वान नारायण मोरेश्वर खरे जी के सहयोग से त्रिपाठी जी ने विविध राग-रागनियों पर विशेषकर पुरानी धुनों पर नयी गीत रचनाएँ की थीं, जो 'अभिनव संगीत' में संगृहीत हैं। इसकी प्रेरणा वस्तुतः लेखक को महात्मा गाँधी ने दी थी। 'आकाश की बातें' त्रिपाठी जी की खगोल-विज्ञान विषयक परिचयात्मक पुस्तक है, जिसका प्रकाशन उन्होंने 1915 में साहित्य भवन (प्रयाग) से किया था। इसमें नक्षत्र-लोक से सम्बन्धित विषयों जैसे आकाश, सौरमंडल, सूर्य, बुध, शुक्र, पृथ्वी, चंद्र, दिन और रात, चंद्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण, ज्वार और भाटा,

मंगल, धूमकेतु, उल्का पिंड, आकाश गंगा, नीहारिका आदि की जानकारी सरल भाषा में दी गयी है। योग के महत्त्वपूर्ण आसनों का सचित्र परिचय 'योग के आसन' में मिलता है। इस पुस्तक की रचना उन्होंने स्वास्थ्य-विज्ञान की दृष्टि से की थी। त्रिपाठी जी स्वयं कुछ आसन किया करते थे और उनकी उपयोगिता को देखते हुए चाहते थे कि युवा पीढ़ी महँगे साधनोंवाली विलायती कसरतों का मोह छोड़कर, अपने ही देश के ऋषि-मुनियों द्वारा निर्दिष्ट अनमोल आसनों को अपनायें, ताकि स्वास्थ्य की दृष्टि से उसे आशातीत लाभ हो। उन्होंने बताया कि अनेक प्रकार की व्याधियों का निवारण भी आसनों से संभव है।

भाषांतर का कार्य भी उन्होंने किया था। दो गुजराती रचनाओं—'कोजागरी' और 'आटलुं तो जाणजो' का अनुवाद उन्होंने 'कौन जाग रहा है' और 'इतना तो जानो' शीर्षकों से किया था। पहली पुस्तक एक आई. सी. एस. विद्वान श्री वी. एन. मेहता, जो युक्त प्रांत के कई जिलों के कलेक्टर और सरकार के सचिव भी रह चुके थे, का लिखा गुजराती नाटक है। इस सामाजिक नाटक में लेखक ने प्राचीन आदर्शों की गरिमा का अंकन किया है। यह सांस्कृतिक मूल्यों और सामाजिक आदर्शों को रेखांकित करनेवाला प्रेरणादायी नाटक है। श्रीयुत् नरहरि द्वारिकादास पारीख विरचित दूसरी पुस्तक का सम्बन्ध राजनीति से है। इस पुस्तक का अनुवाद त्रिपाठी जी ने गाँधी जी के निजी सचिव, महादेव हरिभाई देसाई के अनुरोध पर किया था। 141 पृष्ठों की इस पुस्तक में शासन-प्रणाली, नौकरशाही, महासभा, असहयोग, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा, अस्पृश्यता, हिन्दू-मुसलिम ऐक्य, स्वराज्य, ग्राम-पंचायत, म्यूनिसिपैलिटी और लोकल बोर्ड, लगान तथा अदालत और पंच शीर्षकों के अन्तर्गत तत्कालीन शासन व्यवस्था एवं परिस्थितियों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। राजनीतिक चेतना जगाने वाली इस पुस्तक के मुख-पृष्ठ पर त्रिपाठी जी ने एक स्वरचित सारगर्भित मुक्तक दे दिया है—

'मानो मानो माननीय भारत संतानों
अब तक सोये बहुत, न अब तक लम्बी तानो
हो मनुष्य तो स्वत्व को पहचानो
शासन है या क्या बला, भला इतना तो जानो'

पुस्तक के प्राक्कथन और परिशिष्ट में 'हिन्दुस्तान कैसे बर्बाद हुआ' शीर्षक लेख महादेव देसाई द्वारा लिखे गये हैं। अपने प्राक्कथन में वे लिखते हैं—"मुझे आशा है कि त्रिपाठी जी जैसे सिद्धहस्त लेखक की लेखनी से लिखी हुई यह पुस्तक संयुक्त प्रांत के गाँव-गाँव में पढ़ी जायेगी। स्वराज्य होने पर हम अपना काम अच्छी तरह सँभाल सकें, इसके लिए वहुत-सी आवश्यक बातों में से एक यह भी तो है कि हमारे वहुत से अशिक्षित और अपने गाँव की सीमा छोड़कर बाहर न निकलनेवाले ग्राम-वासी लोग भी देश की आधुनिक दशा सामान्य रूप से समझ लें।"

4

लोक-साहित्य की सेवा

पं. रामनरेश त्रिपाठी ग्राम-जीवन के कुशल चितेरे थे। वे स्वयं ग्राम-संस्कृति के अविभाज्य अंग, उसके जीवन्त प्रतीक और उसकी गौरव-गरिमा के मुखर प्रवक्ता थे। वे जीवन भर अपने को कोइरीपुर का किसान ही मानते रहे। कलकत्ता और इलाहाबाद जैसे नगरों में रहकर भी वे उसके नहीं हो पाये। समग्र भारत की उन्होंने कई बार यात्राएँ कीं, छोटे-बड़े नगरों में रहे-घूमे, परन्तु 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पुनि जहाज पै आवै" की स्थिति में ही स्वयं को रखा। यह उनकी विवशता नहीं थी, एक चुम्बकीय आकर्षण की शक्ति थी, जो उन्हें बार-अपने गाँव की दुनिया से जोड़ती रही। आम, महुए, पीपल और नीम के पेड़ों की सुखद-शीतल छाया में कुछ समय बिताकर वे नयी स्फूर्ति प्राप्त कर लिया करते थे और उसके उपरान्त ही अपने शहर के कार्य-क्षेत्र की ओर अग्रसर होते थे। पशु-पक्षियों, वृक्ष-लताओं, नदी-नालों और आकाश में उमड़ते-घुमड़ते मेघों के साथ बतियाने में उन्हें अनिर्वचनीय सुख की प्राप्ति होती थी। कुदाल, कैंची, आरी, छुरी और खुरपी के उपयोग में उन्हें जीवन का वास्तविक आनन्द दिखाई देता था। गाँवों के भोले-भाले, सरल, निश्छल और सुसंस्कृत स्त्री-पुरुषों के जीवन में वे मनुष्यता के भव्य रूप के दर्शन किया करते थे। गाँवों में प्रचलित गीतों के बोल उनके लिए अमृत-कणों के समान थे। गाँव में बसी भारत की आत्मा के दर्शन उन्होंने किये थे। यही कारण है कि उन्होंने ग्राम-जीवन के हर पक्ष को परम आत्मीयता और जीवंतता से चित्रित किया। हिन्दी में ग्राम-जीवन और उसके साहित्य को लिपिबद्ध करनेवाले वे पहले समर्पित साहित्यकार माने जाते हैं।

त्रिपाठी जी के मन में गाँवों के प्रति नैसर्गिक आकर्षण तो था ही, एक मार्मिक घटना ने उन्हें अपने देहाती भाई-बहनों से पूरी तरह जोड़ दिया था। एक दिन जौनपुर-बदलापुर सड़क पर उन्होंने एक दीन बुढ़िया को घास बेचते हुए देखा। डूबते सूरज के क्षणों में घास न बिक पाने के कारण बुढ़िया के चेहरे पर उभरी

व्याकुलता और चिन्ता ने उनका ध्यान आकृष्ट किया। दो आने की घास को बुढ़िया चार पैसों में बेचने को राज़ी थी, परन्तु इसे ख़रीदनेवाला कोई नहीं था। किनारों से फटी और अनेक स्थानों पर मोटे डोरों से सिली धोती पहने वह चिंतित बुढ़िया त्रिपाठी जी को दरिद्रता की कहानी-सी प्रतीत हुई। देहात की बोली में त्रिपाठी जी ने उससे बातें कीं तो बुढ़िया ने बताया कि चार पैसे मिलते तो दो पैसे बनिये को देकर उसका पुराना हिसाब चुकता कर देती, एक पैसे का नमक ले आती और एक पैसे का गुड़ अपने नाती के लिए ख़रीद लेती। त्रिपाठी जी के यह पूछने पर कि मात्र तीन पैसे मिलने पर वह क्या करेगी, बुढ़िया बोली—"दो पैसे बनिये को दूंगी और एक पैसे का गुड़ नाती के लिए ख़रीद लूँगी। चार दिनों से अलोना खा रही हूँ, एक दिन और सही। शायद कल चार पैसे मिल जाएँ!" त्रिपाठी जी के विशेष आग्रह पर बुढ़िया ने अपनी दर्द भरी कहानी सुनाते हुए कहा बेटा जो कमाता है, वह उसकी बहू और बच्चे के लिए ही पूरा नहीं पड़ता। मैं उसका हिस्सा क्यों खाऊँ? मैं भी खा लूँ तो वह भूखा ही रह जायगा। फिर अगले दिन कमाएगा कैसे? वह न कमायेगा तो वे तीन प्राणी तकलीफ़ पायेंगे न? मैं तो बुढ़िया ठहरी। भूखी रहकर पड़े-पड़े दिन काट लूँगी।"

बुढ़िया की करुण कहानी सुनकर त्रिपाठी जी डूबने-उतराने लगे। "कहाँ तो काव्य के नवरसों की मिथ्या और अस्वाभाविक कल्पना, और कहाँ करुण रस का दर्शन! वे अवाक् थे। उस दिन की घटना ने उन्हें अपने गाँव से अभिन्न कर दिया। ग्राम-जीवन के यथार्थ चित्रांकन के लिए उन्होंने लेखनी पकड़ ली। गाँवों के सुख-दुख, हर्ष-विवाद, उत्थान-पतन की सजीव कहानियों में उन्हें सच्चे साहित्य के दर्शन हुए। शहरी सभ्यता की चमक-दमक से खिंचकर अपनी वास्तविक संस्कृति की छवि को भुला देनेवाले लेखकों पर उन्हें तरस आता था। उन्होंने लिखा—"अमेरिका के लोग रेड इंडियनों में प्रवेश करके उनकी एक-एक बात के जानने में लगे हैं। योरप के लोग अफ्रीका के मनुष्य-भक्षकों तक के बीच में पहुँचकर उनके रीति-रस्म की खोज में लगे हैं। मनुष्य ही के नहीं, यूरोप अमेरिका के विद्वान् पशु-पक्षी और कीट-पतंग तक के रहन-सहन और स्वभाव की खोज करने में दिन-रात लगे रहते हैं। और हम, अपने ही देशवासियों से अपरिचित हैं।" इस कसक और क्षोभ ने त्रिपाठी जी को ऐसे पथ पर पहुँचा दिया, जिस पर चलनेवाले वे पहले व्यक्ति थे। वे पथ-प्रदर्शक बन गये।

महामना मदन मोहन मालवीय त्रिपाठी जी से अक्सर कहा करते थे—"आप तो नित्य गंगाजी में स्नान करते हैं।" उन्होंने ठीक ही कहा था, यह गंगा थी ग्राम-गीतों की धारा! त्रिपाठी जी इस धारा में अवगाहन करनेवालों में अनन्य थे। किनारे खड़े रहकर धारा का आनन्द लूटनेवाले त्रिपाठी जी के जीवन में एक ऐसा प्रसंग आया, जिससे चमत्कृत-संप्रेरित होकर वे रसवंती धारा में उतरे थे।

बात 1924 ई. के आस-पास की है। प्रयाग से जौनपुर जाते हुए भन्नैर स्टेशन पर उनके डिब्बे में कुछ ग्रामीण यात्री चढ़े जो कमाने के लिए कलकत्ता जा रहे थे। कुछ स्त्रियाँ जो अपने मर्दों को स्टेशन पर पहुँचाने आयी थीं, रो रही थीं। गाड़ी चलने पर उन पुरुषों के साथ चढ़ी दो-चार औरतें बाद में गाने लगीं—

"रेलिया होइ गइ मोर सवतिया,
पिय के लादि लेइ गइ हो।"

त्रिपाठी जी लिखते हैं—"रेल की तुलना सौत से होती सुनकर मैं यकायक चौंक उठा। यह तो एक बिल्कुल नयी उपमा है। किसी स्त्री ही ने यह गीत रचा होगा। नहीं तो, ऐसी मर्म की बात कहने की इस ज़माने में फ़ुर्सत ही किसको? क्या स्त्रियाँ भी कवितामय हृदय रखती हैं? मैं उस कड़ी के साथ ही यह बात सोचने लगा। कई सौ वर्ष पहले रहीम ने स्त्रियों की तरफ़ से एक बरवा कहा था। जिसमें सौत की तुलना हंसिनी से की गयी है। उस कड़ी को सुनने के साथ ही मुझे वह बरवा याद आया था—

पिय सन अस मन मिलयूँ, जस पय पानि।
हंसिनी भई सवतिया, लइ बिलगानि॥

इसमें हंस-हंसिनी के विशेष गुण—सो भी, कवियों के कथनानुसार, पक्षी-विद्या विशारदों के कथनानुसार नहीं, मिले हुए दूध और पानी को अलग कर देने पर लक्ष्य करके विचार बाँधा गया है। हंसिनी के इस कल्पित गुण को जानने वाले सहृदय रसिकजन ही इस बरवे को सुनकर सिर हिला सकते हैं। पर रेल तो प्रत्यक्ष सौत का-सा कार्य करती है। वह पति को लेकर भाग जाती है। मुझे गीत रचने वाले के हृदय की सरसता बड़ी ही मधुर जान पड़ी। बस, इसी घटना के बाद से मैं ग्राम-गीतों की ओर आकर्षित हुआ हूँ।"

उपर्युक्त दो घटनाओं ने त्रिपाठी जी को ग्राम-साहित्य का उपासक रचनाकार बना दिया। ग्राम-जीवन से संबंधित त्रिपाठी जी का साहित्य इस प्रकार है: कविता-कौमुदी (पाँचवाँ भाग—ग्रामगीत, 1929 ई.), मारवाड़ के मनोहर गीत (1930 ई.), घाघ और भड्डरी (1931 ई.), सोहर (1937 ई.), हमारा ग्राम-साहित्य (1940 ई.) और ग्राम साहित्य (तीन भागों में, 1951-52 ई.)। इनमें गाँवों में प्रचलित गीतों, गाथाओं, कहावतों, मुहावरों आदि का विशद संकलन-विवेचन किया गया है। चूँकि त्रिपाठी जी कवि थे और गाँवों के गीतों में उन्होंने रस का अजस्र प्रवाह देखा था, अतः उक्त गीतों के संग्रह में उन्होंने अधिक रुचि दिखाई। उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त उस समय की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में ग्राम जीवन-विषयक उनके अनेक निबन्ध भी प्रकाशित हुए। उनमें ग्राम्य गीत (माधुरी), काश्मीरी ग्रामगीत (हिन्दुस्तानी), मुहावरों में जनजीवन (त्रिपथगा) आदि उल्लेखनीय हैं।

आज जो रचनाएँ लोकगीत के नाम से जानी जाती हैं, त्रिपाठी जी ने उन्हें ग्राम-गीत कहना अधिक उचित समझा था। उनका मंतव्य था कि जो गाँव की भूमि में उत्पन्न हुई हैं, अनुभवी देहातियों ने जिनको गढ़ा है और जो कंठस्थ साहित्य के रूप में अब भी गाँवों में अपने विशुद्धतम रूप में विद्यमान हैं, उन्हें गाँवों की ही संपदा मानना चाहिए। लोक में ग्राम की अपेक्षा विस्तार अधिक है। "लोक गीत कहने से नगर-निवासियों के सामाजिक जीवन के गीत भी सम्मिलित हो जाते हैं, पर नगर-निवासियों के गीत हैं ही क्या? केवल कुछ गजल, ठुमरियाँ, ख्याल और कौवाली। यह दाल में नीबू निचोड़कर पूरी थाली पर कब्जा कर लेने जैसी बात है।" त्रिपाठी जी का विचार था कि 'लोक' 'ग्राम' का पर्याय नहीं हो सकता। अतः ग्रामीणों की बोलियों में रचित गीतों को ग्राम-गीत की संज्ञा देना ही उचित है। कविता-कौमुदी (ग्राम-गीत) में उन्होंने इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा कि 'ग्रामीणों ने बिना किसी याचना और बिना किसी स्वार्थ की प्रेरणा से समाज को जो साहित्य प्रदान किया है, उसके साथ उसका ग्राम शब्द अवश्य लगा रहना चाहिए। यह उनकी एक मधुर स्मृति है और हमारी कृतज्ञता की द्योतक भी है।" त्रिपाठी जी ग्रामीण संस्कृति और जीवन के प्रवक्ता थे, अतः ग्राम-गीत पर उनका बल देना स्वाभाविक था। परन्तु भाषा के अन्य विद्वानों ने ग्राम-साहित्य को लोक-साहित्य ही कहना अधिक उचित ठहराया। उनके अनुसार ग्राम शब्द लोक की विस्तृत छवि को संकुचित कर देता है। हिन्दी के अधिकांश लेखकों ने 'ग्राम-साहित्य' के लिए 'लोक-साहित्य' और 'ग्राम-गीत के लिए 'लोक-गीत' का ही प्रयोग किया है। जो हो, दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है, मूल स्वर का उत्स तो दोनों के अनुसार गाँव ही है।

1924 ई. में ही त्रिपाठी जी के मन में ग्राम-गीतों के संग्रह की ललक जाग उठी थी। एक महान् दुष्कर कार्य के संपादन के लिए उन्होंने कमर कस ली। यह हिन्दी का अछूता क्षेत्र था। त्रिपाठी जी के सामने कोई निश्चित दिशा नहीं थी, कोई मार्ग-दर्शक नहीं था, कोई मानक कार्य भी नहीं था। केवल आजमगढ़ के तहसीलदार पं. मन्नन द्विवेदी का एक लघु ग्राम गीत संग्रह 'सरवरिया' (1913) उपलब्ध था, जिसमें सरवार (गोरखपुर और बस्ती जिले) की भाषा में वहाँ के गीत और छोटी-छोटी कहानियाँ अर्थसहित दी गयी थीं। 1924 मे श्रीयुत संत-राम ने पंजाब के कुछ गीत हिन्दी अर्थसहित छपवाये थे। परन्तु इनसे उनको कोई विशेष सहायता न मिल सकी। वे अकेले थे, सैंकड़ों बोलियों की विशाल दुनियाँ उनके सामने थी। परन्तु हताश होना उन्होंने सीखा ही नहीं था। संकल्प को कार्य रूप में परिणत करने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। उनका सिद्धान्त था—

"पंथ दुर्गम दूर मंजिल, तू अकेला क्या हुआ,
राह चूमेगी चरण अभियान करना चाहिए।"

सच्ची लगन, निष्ठा, धैर्य और पूरे अध्यवसाय से वे ग्राम-गीतों के संग्रह के महान् यज्ञ के पुरोधा बन गये। 1925 ई. में ही उन्होंने सुलतानपुर ज़िले में ग्राम-गीतों की खोज की और जाँत के दो गीत अर्थ सहित 'सरस्वती' में प्रकाशित करवाए। यही उनके उद्योग का श्रीगणेश था।

1926 ई. के सितम्बर महीने में त्रिपाठी जी ने अपनी गीत-यात्रा आरम्भ की। प्रयाग, जौनपुर, प्रतापगढ़, रायबरेली, मिर्ज़ापुर, सुलतानपुर आदि ज़िलों के गाँवों में घूम-घूमकर उन्होंने गीत एकत्र करने आरंभ किये। गीत-संग्रह का काम सरल नहीं था। स्त्रियों के गीतों को लिपिबद्ध करने में उन्हें अप्रत्याशित कठिनाइयों और कभी-कभी अपवादों का भी सामना करना पड़ा। आज की तरह ध्वन्यंकन बक्से भी कहाँ थे। पर्दे की प्रथा के कारण भी स्त्रियों के गीत उतारने में कठिनाई थी। इसके लिए वे मेले-ठेले में उनके झुंड के साथ काग़ज़-पेन्सिल लेकर चलते। धान का खेत निराते समय मेंड पर, छत कूटते समय छत पर और चक्की पीसने के समय रात के आख़िरी पहर में गृहस्थ के घर के पिछवाड़े बैठकर, उन्होंने गीत लिखे थे। जाड़े की रातों में बड़े-बूढ़ों के साथ अलाव के पास बैठकर उनसे बातें करते हुए और अर्धरात्रि से चलने वाले ईख के कोल्हू के निकट बैठकर थर-थर काँपते हुए गीतों को काग़ज़ पर उतारना किसी तपस्या से कम न था। त्रिपाठी जी ने अनुभव किया कि गीत एक ही स्थान पर पूर्णतया उपलब्ध नहीं होते, उन्हें कई स्थानों पर सुन-सुनकर पूर्ण करना होता था। यह श्रमसाध्य कार्य उनके जैसा दृढ़प्रतिज्ञ समर्पित सारस्वत सपूत ही कर सकता था। सन् 1925 से 1929 ई. तक वे गाँव-गाँव घूमते रहे और अपने स्वास्थ्य की चिन्ता किये बिना गीत-संग्रह करते रहे। भोजन की अनियमितता और अधिक गुड़-सेवन से वे मधुमेह से ग्रस्त हो गये, परन्तु उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। इस महत्त्वपूर्ण कार्य में उन्होंने कई मित्रों की भी मदद ली। भारत के भिन्न-भिन्न भागों से उनके घनिष्ठ मित्रों ने उन्हें कुछ गीत भेजे, लेकिन वे आटे में नमक के बराबर थे। 1927 के अन्त में त्रिपाठी जी बम्बई गये, जहाँ उन्होंने मराठी और गुजराती गीतों का संग्रह किया। गुजरात में वे द्वारका, जामनगर, राजकोट, पोरबन्दर, सोमनाथ, जूनागढ़, गिरनार, गोंडल, मांडवी, पालिताना, बढ़वान, लिमड़ी आदि स्थानों पर गये और गीतों का संचयन किया। राजस्थान में अजमेर, उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, फ़तेहपुर, पिलानी आदि क्षेत्रों की यात्राएँ कीं। पिलानी में श्रीयुत घनश्यामदास जी बिड़ला ने गीत-संग्रह में उन्हें चार हज़ार रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान की। राजस्थान में उन्हें आशा से अधिक ग्राम-साहित्य का भंडार मिला। महाराणा प्रताप के साथी भीलों के वीर रसपूर्ण गीतों को इकट्ठा किया। राजस्थान से त्रिपाठी जी पंजाब होते हुए उत्तर प्रदेश लौट आये। मई 1928 में उन्होंने कश्मीर की यात्रा की, जहाँ ढाई महीने रहकर उन्होंने

गीतों का संग्रह किया। इस प्रकार 1925 से 1928 तक लगभग दस हज़ार मील की पैदल और रेल-यात्राएँ करके उन्होंने दस हज़ार से अधिक ग्राम-गीत इकट्ठे कर लिये।

ग्राम-गीतों के संग्रह के दौरान त्रिपाठी जी ने अनुभव किया कि गाँवों में राह चलते हुए स्त्री-पुरुष गीत गाते चलते हैं। उनकी मेहनत के हर काम के साथ गीत का अटूट सम्बन्ध है। समूचा गाँव गीत-संगीत की पाठशाला है। "जो नहीं गा सकते या जिनको गाने का अवकाश नहीं मिलता, उन्हें सरवन, गोपीचन्द, भरथरी आदि गाने वाले भिखमगों, शिव-पार्वती का विवाह गाने वाले जोगी, सन्तों के भजन गाने वाले रैदास भगत, संसार की असारता के पद गानेवाले मँगते साधू और फ़कीर घूम-घूमकर गाते और सुनाते रहते हैं। शिक्षा-प्रचार का काम प्रातः काल के चार बजे से, जब से मंदिरों मे ठाकुर जी जागते हैं और मसजिदों में अज़ान दी जाती है, रात के दस बजे तक सोने के समय तक, बराबर जारी रहता है।" (भूमिका, हमारा ग्राम साहित्य) जीवन-जगत की रमणीयता से लेकर संसार की असारता को मुखरित करने वाले इन गीतों के संग्रह के प्रयोजन पर भी त्रिपाठी जी प्रकाश डालते हैं। उनकी दृष्टि में इस साहित्य के संग्रह से सात लाभ हैं—पहला, हम एक कंठस्थ साहित्य को लिपिबद्ध करके उसे सुरक्षित कर लेंगे; दूसरा, कवित्तपूर्ण गीतों की रचना करनेवाली ग्रामीण स्त्रियों के मस्तिष्क की महिमा देखने को मिलेगी; तीसरा, हिन्दी की काव्य-रचना-शैली पर इन गीतों का प्रभाव पड़ेगा; चौथा, देश की भावात्मक एकता में मदद मिलेगी; पाँचवाँ, अपनी पसंद के जीवन-संगी चुनने के अधिकार को प्रतिध्वनित करनेवाले गीतों से विवाह की स्वस्थ परंपरा का आदर्श उपस्थित होगा, छठा, पारिवारिक सदस्यों के आपसी प्रेम में बढ़ोत्तरी होगी तथा सातवाँ लाभ यह होगा कि हम हिन्दी साहित्य में नये-नये मुहावरों, कहावतों, पहेलियों और नवीन शब्दों की वृद्धि कर सकेंगे। वस्तुतः त्रिपाठी जी ने जो ग्राम-गीत संगृहीत करके हमें दिये हैं, वे हमारी संस्कृति, हमारे जन-जीवन और हमारे आचार-विचार के दर्पण हैं। आसेतु हिमाचल भारत के घर-घर में गुंजरित होनेवाले गीतों में उन्होंने सर्वत्र एक-सी समानता देखी। इसलिए उन्होंने कहा: "जान पड़ता है, एक ही आत्मा भिन्न-भिन्न भाषाओं में बोल रही है। यह हमारी एक संस्कृति का प्रभाव है। और यही इस बात का भी एक सबल प्रमाण है कि सारा भारतवर्ष एक है।" (भूमिका, कविता-कौमुदी, ग्राम-गीत)।

त्रिपाठी जी ने ग्राम-गीतों में इतिहास-दर्शन भी किये थे। झांसी के आसपास के गीतों में महारानी लक्ष्मीबाई की वीरता और भोजपुरी गीतों में बिहार के वीर कुँअर सिंह के शौर्य का चित्रण उन्होंने देखा था। राजपूताने के जाटों के गीतों में भी उन्होंने अनेक ऐतिहासिक घटनाओं के बीज देखे। उनके जन्म-ग्राम कोइरीपुर

के पास चाँदा नाम एक गाँव था, जहाँ 1857 के बलवे में अंग्रेजों और कालाकाँकर (प्रतापगढ़) के बिसेनवंशी राजा में घोर युद्ध हुआ था। अब भी वहाँ उस युद्ध के गीत गाये जाते हैं—"कालेकाँकर क बिसेनवा, चाँदे गाड़े बा निसनवाँ।" इन ग्राम-गीतों में त्रिपाठी जी ने चरखे का नाद भी सुना। एक स्त्री का पति परदेश गया है। स्त्री घर में बैठकर सोच रही है—

> **धरि गइलें चनन चरखवा सिरिजि गज ओबरि हो राम।**
> **दिन भरि कतबइ चरखबा ओहरियाँ लोठँगाइ देबइ हो राम॥**
> **रामा साँझ खनी सुतबइ महयाजी के कोरवाँ।**
> **त प्रभु बिसराइ देबइ ओ राम॥**

—'मेरे प्राणनाथ कोठरी बनाकर उसमें चंदन का एक चरखा रख गये हैं। दिन भर मैं चरखा कातूँगी, फिर उसे उधर खड़ा कर दूँगी। संध्या को माँ (सास) की गोद में सोऊँगी और स्वामी के वियोग का दुःख भुला लूँगी।' वियोगिनी का आसरा है चरखा।

कविता-कौमुदी (ग्राम-गीत) में सोहर, अन्न-प्राशन, मुंडन, जनेऊ, नहछू, और विवाह के गीत हैं, ऋतुओं के गीत हैं, आल्हा और बारहमासा हैं, शीतला माता के और मेले के गीत हैं। विभिन्न जातियों के गीतों के अतिरिक्त भारत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों जैसे काश्मीर, पंजाब, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र, तमिलनाडु, केरल, उड़िया, बंगाल, आसाम के गीतों की झलक भी लेखक ने दी है। हिन्दी-भूभाग की अधिकांश गीत-शैलियाँ पुस्तक में समाहित हैं। ग्राम-साहित्य के अंतर्गत त्रिपाठीजी ने गाँवों में प्रचलित कहावतों और मुहावरों पर भी विशद विचार किया है।

त्रिपाठीजी द्वारा संगृहीत ग्राम-गीतों की एवं अन्य साहित्य की देश-विदेश के विद्वानों ने मुक्त कंठ से सराहना की। महात्मा गाँधी, गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर, महामना मदन मोहन मालवीय, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, लाला लाजपतराय, डॉ. भगवान दास, महामहोपाध्याय डॉ. गंगानाथ झा, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रो. अमरनाथ झा प्रभृति विद्वानों ने इस महान् लोक-यज्ञ के लिए त्रिपाठी जी के उद्योग की प्रशंसा की। जौनपुर ज़िले के कलेक्टर श्री ए. जी. शेरिफ़ ने त्रिपाठी जी द्वारा संगृहीत कुछ गीतों को 'हिन्दी फ़ोक सोंग्स' नाम से अंग्रेज़ी में निकाला था। त्रिपाठी जी के ग्राम-गीतों पर उनके एक अंग्रेज मित्र ने एक निबंध लिखा था जिसे 'रॉयल एशियाटिक सोसायटी' ने स्वीकार किया था और इस पर फ्रांस, जर्मनी, इंगलैंड आदि देशों के साहित्यिकों में चर्चा भी छिड़ी थी। लाला लाजपतराय तो त्रिपाठी जी के परम प्रशंसक ही थे। उन्हें गीतों की मार्मिकता छू गयी थी। पिछड़ी जातियों के मार्मिक गीतों को

सुनकर उनके हृदय की आर्द्रता आँखों से छलक पड़ती थी। ग्रामीण गीतों के संग्रह पर उन्होंने त्रिपाठी जी को बधाई देते हुए लिखा था कि लोक-साहित्य के उद्धार का आपका यह प्रयास देश की स्थायी सेवा है। सुप्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने ग्राम-गीत के संग्रह को 'निखिल भारत के साहित्य का गौरव' माना था। डॉ. भगवान दास ने यदि यह कहा कि ग्राम-गीतों में "रस की मात्रा व्यास, वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति से भी तथा तुलसीदास और सूरदास से भी अधिक" है, तो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं थी। यही कारण है कि त्रिपाठी जी को ग्राम गीतों में हिन्दी कविता से अधिक मिठास मालूम हुई और उन्होंने आगे जाकर कविता लिखना एक प्रकार से बन्द ही कर दिया।

'मारवाड़ के मनोहर गीत' पुस्तक की रचना उन्होंने 'चाँद' के 'मारवाड़ी अंक' में प्रकाशित विचारों की प्रतिक्रिया स्वरूप की थी। उक्त अंक में मारवाड़ी-साहित्य की विकृत छवि प्रस्तुत की गयी थी, जो त्रिपाठी जी जैसे लोकजीवन के पारखी और साक्षी साहित्यिक के लिए असह्य थी। अपनी पुस्तक में उन्होंने राजस्थान के साहित्य के रमणीय पक्ष को उजागर किया और सुंदर से सुंदर काव्योद्धरण देकर यह प्रमाणित किया कि "प्रतिभा किसी देश-विदेश की संपत्ति नहीं होती। सजला, सफला, शस्य श्यामला भूमि में कवि उत्पन्न हो सकते हैं तो निर्जला, निष्फला रेणुराशि-संकुला धरती में भी कवि होते हैं। मारवाड़ में भी कविता का विकास उसी उन्माद के साथ हुआ है, जैसा युक्तप्रांत और बंगाल में। प्राचीन काल के ऐतिहासिक कवियों का कहना ही क्या? वर्तमान काल में भी गाँव-गाँव में कवि हैं, हृदय-हृदय में कविता का जागरण है, वाणी-वाणी में सूक्तियों का स्रोत है। कविता के कितने ही मर्मज्ञ और सहृदय कवि गाँवों में अप्रकट रूप से निवास करते हैं।" त्रिपाठी जी ने पुस्तक में गाँवों में प्रचलित अनेक दोहों, सोरठों और गीतांशों को उद्धृत कर मारवाड़ी लोकजीवन की काव्यमय झाँकी प्रस्तुत की है। यथा—

तन तलवाराँ तिलछियो, तिल तिल ऊपर सीव।
आला घावाँ ऊठसी, छिन एक ठहर नकीब॥

कोई वीर पुरुष युद्ध में घायल होकर घर आया है। घर के सामने चारण उसकी वीरता का बखान कर रहा है। उस समय उस वीर की स्त्री कहती है—'हे चारण! मेरे वीर पति का शरीर तलवार के घावों से टुकड़े-टुकड़े हो गया है, वह एक-एक तिल की दूरी पर सिला हुआ है। तेरी कविता सुनकर वह गीले घावों से ही उठ खड़ा होगा। इसलिए हे चारण! तू ज़रा ठहर जा।' 'एक ग्रामीण विरहिणी की यह मंजुल भावना द्रष्टव्य है—

जे धण होती बादली, आ भै जाय अडंत।
पंथ बहंता साजना, ऊपर छाँह करंत॥

—हे प्रिय यदि मैं बदली होती तो आकाश में जाकर ठहरती और राही साजन के ऊपर छाया करती चलती।

"ग्राम साहित्य के तीसरे भाग में गाँवों में प्रचलित कहावतें, मुहावरे, पहेलियाँ, मुकरियाँ, ढकोसले आदि दिये गये हैं। किसानों के वर्षा-विज्ञान पर प्रकाश डालते हुए लेखक यह घोषित करते हैं कि यहाँ का हर एक किसान एक सजीव वेधशाला है जो वायु की गति, वृष्टि, बिजली, बदली और गर्जना को देख-सुनकर भविष्य-वाणी कर सकता है। पुस्तक में सामाजिक लोकोक्तियों के अतिरिक्त गाँवों के साहित्यकारों जैसे तुलसी, कबीर, गिरधर कविराय, घाघ, माधौदास, लालबुझक्कड़ आदि के चुने हुए लोक-सुभाषित भी सम्मिलित किये गये हैं। दृष्टांतस्वरूप माधौदास का एक सुभाषित लें, जिसमें वे कहते हैं—

"जुआ, जुल्म और त्रिया पराई,
जाय लाज अरु होई हँसाई।
धन धरती वह लो है छीन।
माधौदास परिहरौ तीन।"

त्रिपाठी जी ग्राम-साहित्य के सच्चे उद्धारक थे। उन्होंने अकेले वह कार्य किया, जो बड़ी-बड़ी संस्थाएँ नहीं कर सकतीं। उन्होंने आशा व्यक्त की कि भारत के शिक्षित समुदाय में कभी अपनी इस विरासत पर गर्व का भाव जाग्रत होगा और वह इसके संरक्षण-संवर्धन का उद्योग करेगा। पाश्चात्य देशों में इस दिशा में हुए कार्य से प्रेरणा लेकर भारतीय लेखक यह रचनात्मक कार्य करेंगे, यह विश्वास उन्होंने व्यक्त किया। कार्यारंभ तो वे कर ही चुके थे, उसके विकास और विस्तार के लिए उन्होंने अनेक मंचों से विद्वानों और लोक-साहित्य के प्रेमी अनुसंधित्सुओं का आह्वान किया। 15 अगस्त 1957 को उत्तर प्रदेश शासन के सूचना विभाग के तत्वाधान में आयोजित 'लोक-साहित्य समिति' की संगोष्ठी में, जिसमें त्रिपाठी जी के अतिरिक्त आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय प्रभृति विद्वान सम्मिलित हुए थे, उन्होंने अपनी मनोकामना व्यक्त करते हुए कहा था—'अब आप लोग लोक-साहित्य के कार्य को आगे बढ़ाइए, यही मेरी इच्छा है।' आज इलेक्ट्रोनिक प्रौद्योगिकी के विकास के युग में त्रिपाठी जी के स्वप्न को साकार किया जा सकता है। सन् 1929 में ही त्रिपाठी जी ने 'गीतों के रिकार्ड और नृत्यों के फिल्म' बनाने की आवश्यकता पर देश का ध्यान आकृष्ट किया था, आज आकाशवाणी और दूर-दर्शन इस दिशा में जागरुक और प्रयत्नरत हैं, यह कम संतोष की बात नहीं है।

5

उपसंहार

द्विवेदीकालीन साहित्यकारों में पं. रामनरेश त्रिपाठी का सम्माननीय स्थान है। उनका साहित्यिक अवदान इतना विशाल और मूल्यवान है कि वह उन्हें हिन्दी के अग्रगण्य रचनाकारों की पंक्ति में प्रतिष्ठित करता है। साहित्य की प्रत्येक विधा में उन्होंने साधिकार लिखा और अपनी शताधिक प्रकाशित कृतियों से मातृभाषा की नैष्ठिक अर्चना की। उस समय हिन्दी का लेखन अपने विस्तार की दिशाएँ ढूँढ रहा था। खड़ी बोली की कविता अपनी अलग पहिचान निर्धारित करने को उद्यत थी। गद्य के विविध आयाम उभरने लगे थे। देशव्यापी सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी को प्रचारित करने और ज्ञान-विज्ञान के अभिव्यक्त माध्यम के रूप में उसे विकसित करने की आवश्यकता चुनौती बनकर खड़ी थी। देश को अपनी हिन्दी को प्रचारित करने और ज्ञान-विज्ञान के अभिव्यक्ति माध्यम के स्वतन्त्रता की प्रतीक्षा थी। त्याग और बलिदान के पथ पर लोगों को अग्रसर करने के लिए उद्बोधन के गीत मुखरित करने थे। अज्ञान, रूढ़िवाद, दासत्व और नैराश्य के व्यामोह में भटकी हुई जनता में नूतन प्राण-संचार करना था। जागरण का शंख फूंकना था। ऐसे समय में अपना कर्त्तव्य और धर्म मानकर उन्होंने अपनी लेखनी उठायी और पूर्ण समर्पण भाव के साथ लिखना आरम्भ किया।

त्रिपाठी जी देशभक्त थे। सत्याग्रह के मार्ग पर चले थे। राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेकर उन्होंने साहित्यकारों का मान बढ़ाया था। पं. जवाहरलाल नेहरू उन्हें 'स्वराज्य की लड़ाई का एक आला सिपाही' मानते थे। उन्होंने अपनी रचनाओं से देशभक्ति का प्रबल भाव उद्‌बुद्ध किया था। उनका समस्त काव्य राष्ट्रमंगल की भव्य भावना से ओतप्रोत है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में यदि यह लिखा कि 'देशभक्ति को रसात्मक रूप त्रिपाठी जी द्वारा प्राप्त हुआ' तो वह सर्वथा उचित ही था। भारतीय साहित्य में उन्हें एक ऐसे कवि के रूप में याद किया जाएगा, जिन्होंने देशभक्ति के रस से कविता का अभिसिंचन किया था। पराधीनता का पाप जो उन्हें भीतर ही भीतर साल रहा

था, उनकी कविता में क्षोभ बनकर प्रकट हुआ। पराधीन भारत का चित्र खींचकर उन्होंने कहा कि संसार को सभ्यता की शिक्षा देने वाले लोगों का अधः पतन किंचित् भी क्षम्य नहीं है। प्रताड़ना के शब्दों में उन्होंने कहा—

शान्ति, शिक्षा, शीलता, शालीनता,
खो चुके तुम शूरता स्वाधीनता;
जो निरुद्यम है भला वह क्या जिया?
हाय तुमने जन्म लेकर क्या किया?

त्रिपाठी जो ने अपनी कविताओं में भारत के गौरवशाली अतीत को चित्रित किया। विदेशियों के अनीतियुक्त शासन में झुलसते वर्तमान की वेदना को वाणी दी और स्वतन्त्र एवं समृद्ध भविष्य की छवि को रूपायित किया। बच्चों में स्वदेश प्रेम का भाव भरने के लिए उत्साहवर्धक कविताओं की रचना की तो युवकों का आह्वान करने के लिए ओजस्वी छन्द भी रचे। उनके समग्र साहित्य में, चाहे काव्य हो या नाटक या जीवन-चरित्र, राष्ट्रीयता की उदात्त भावना ही प्रस्फुटित हुई है। 1920 ई. में ही उन्होंने स्वतन्त्रता का साक्षात्कार कर लिया था। स्वाधीन भारत का चित्रण करते हुए 'पथिक' में उन्होंने लिखा :

"शासन का सब भार लिया जनता ने अपने कर में,
परम हर्ष, आनन्द, मोद, सुख व्याप्त हुआ घर-घर में।"

वे भविष्यद्रष्टा कवि थे। आज़ादी के लगभग बीस वर्ष पूर्व रचित अपनी बाल-कविता 'बारह महीने' में वे जिस प्रकार स्वातन्त्र्य की सम्पूर्ण गौरव-गाथा प्रस्तुत कर छोटे-छोटे बच्चों को स्वाधीन भारत के दर्शन कराते हैं, वह उनका नितान्त अनूठा और अद्भुत भविष्य-दर्शन है :

चैत महीने में स्वराज्य की हमने की अभिलाषा।
बैसाख मास में तजदी हमने सकल पराई आशा॥
ज्येष्ठ मास में हमने अपनी भाषा को अपनाया।
आषाढ़ मास में शिक्षा को अपने अनुकूल बनाया॥
सावन में सब वस्त्र विदेशी कर एकत्र जलाये।
भादों से घर-घर में चरखे करघे गये चलाये॥
क्वार मास में गाँव-गाँव में पंचायत बैठायी।
कातिक में सब होश सम्भाला हमने पाई-पाई॥
अगहन में सेना युवकों की हमने नयी बनाई।
पौष मास में विदेशियों से जीती कड़ी लड़ाई॥
माघ मास में धर्म राज्य की हमने नीति चलाई।
फागुन में आनन्द मनाया, मिलकर भाई-भाई॥

(हिन्दी की दूसरी पुस्तक)

उन्होंने उस काल में साहित्य की सर्जना की, जब देश को महात्मा गाँधी जैसे युग पुरुष का नेतृत्व प्राप्त हुआ था। गाँधी जी को उन्होंने अपना चरित-नायक बनाया। सत्य, अहिंसा और प्रेम के आदर्श उन्होंने अपनी कृतियों में उतारे। वे परम निष्ठावान गाँधीवादी थे। साम्प्रदायिक सद्भाव और प्रेम की उन्होंने 'बफाती चाचा' में प्राण-प्रतिष्ठा की। 'पेखन' के गीतों में वे गा उठे—

"है एक ही सबका पिता, अल्लाह ही भगवान है,
नाम ही का भेद है, वह राम ही रहमान है।"

उन्होंने स्वतन्त्रता के लिए जो अक्षर-साधना की, वह केवल भारत के लिए नहीं थी, समग्र विश्व के पराधीन देशों की मुक्ति की शुभ कामना से सम्पृक्त थी। उनके मानवतावादी कवि ने 'अतीत चिन्ता' करते हुए कहा था—"स्वाधीन हो मनुष्य, इसी स्वार्थ के लिए, हम भी स्वतन्त्र थे कभी, परमार्थ के लिए।" विश्व के सारे देश स्वाधीन हों, वहाँ की प्रजाएँ सुखी और निश्चित हों और भारत की मुक्ति विश्व-मानवता की मुक्ति बने, यही उनकी मंगल कामना थी। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए 'मिलन' में संघर्ष और बलिदान की प्रेरणा है तो 'पथिक' में गाँधी जी की अहिंसक क्रान्ति के मानवतावादी आदर्श की चेतना है। 'स्वप्न' तो आज़ादी की रक्षा के लिए सतत जागरूक रहने का आह्वान-काव्य ही है।

त्रिपाठी जी सत्य, अहिंसा, प्रेम, मुक्ति जैसे मानवादर्शों और मूल्यों के व्याख्याता थे। राष्ट्रीय साहित्य के विधाता थे। भारत की राष्ट्रीय और जातीय उद्बोधन की परम्परा को परिपुष्ट करने वाले समर्थ कवि थे। वे बाल-साहित्य के आदि उद्भावक और ग्राम-साहित्य के अग्रणी उद्धारक थे। विपुल परिमाण में बहुविध साहित्य की रचना करके उन्होंने भारतीय वाङ्मय की अथक सेवा की। उनकी साधना उन्हें लोकप्रियता के उच्च शिखर पर ले गयी। उनके राष्ट्रीय साहित्य की प्रेरणा सार्वदेशिक है, शाश्वत है। उन्होंने ही कभी लिखा था— 'कविता ऐसे पुरुष तैयार करती है, जिनका इतिहास लिखा जाता है।' उनका कथन उन्हीं पर चरितार्थ होता है। वे सचमुच साहित्य के इतिहास-पुरुष थे।

चयनिका

१. प्रार्थना

हे प्रभो आनंददाता ज्ञान हमको दीजिए।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।।
लीजिए हमको शरण में हम सदाचारी बनें।
ब्रह्मचारी, धर्मरक्षक, वीर व्रत-धारी बनें।।

२. अन्वेषण

मैं ढूंढ़ता तुझे था जब कुंज और बन में।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में।।
तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था।
मैं था तुझे बुलाता संगीत में, भजन में।।
मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू।
मैं बाट जोहता था, तेरी किसी चमन में।।
बनकर किसी के आँसू मेरे लिए बहा तू।
आँखें लगी थीं मेरी तब मान और धन में।।
बाजे बजा-बजा के मैं था तुझे रिझाता।
तब तू लगा हुआ था पतितों के संगठन में।।
मैं था विरक्त तुझसे जग की अनित्यता पर।
उत्थान भर रहा था, तब तू किसी पतन में।।
बेबस गिरे हुओं के तू बीच में खड़ा था।
मैं स्वर्ग देखता था, झुकता कहाँ चरन में।।
तूने दिया अनेकों अवसर न मिल सका मैं।
तू कर्म में मगन था मैं व्यस्त था कथन में।।
हरिचन्द और ध्रुव ने कुछ और ही बताया।
मैं तो समझ रहा था तेरा प्रताप धन में।।
मैं सोचता तुझे था रावन की लालसा में।
पर था दधीचि के तू परमार्थ-रूप तन में।।
तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था।
पर तू बसा हुआ था फ़रहाद कोहकन में।।
क्रीसस की हाय में था करता विनोद तू ही।

तू अन्त में हँसा था महमूद के रुदन में ।।
प्रह्लाद जानता था तेरा सही ठिकाना ।
तू ही मचल रहा था मंसूर की रटन में ।।
आखिर चमक पड़ा तू गाँधी की हड्डियों में ।
मैं था तुझे समझता सुहराब पील तन में ।।
कैसे तुझे मिलूँगा जब भेद इस कदर है ।
हैरान होके भगवन् आया हूँ मैं सरन में ।।
तू रूप है किरन में सौन्दर्य है सुमन में ।
तू प्राण है पवन में विस्तार है गगन में ।।
तू ज्ञान हिन्दुओं में ईमान मुसलिमों में ।
तू प्रेम क्रिश्चियन में है सत्य तू सुजन में ।।
हे दीनबन्धु ! ऐसी प्रतिभा प्रदान कर तू ।
देखूँ तुझे दृगों में मन में तथा वचन में ।।
कठिनाइयों दुखों का इतिहास ही सुयश है ।
मुझको समर्थ कर तू बस कष्ट के सहन में ।।
दुख में न हार मानूँ सुख में तुझे न भूलूँ ।
ऐसा प्रभाव भर दे मेरे अधीर मन में ।।

३. राम कहाँ मिलेंगे ?

ना मंदिर में ना मसजिद में
ना गिरजे के आस-पास में ।
ना पर्वत पर ना नदियों में
ना घर बैठे ना प्रवास में ।
ना कुंजों में ना उपवन के
शांति-भवन या सुख-निवास में ।
ना गाने में ना बाने में
ना आँसू में नहीं हास में ।
ना छंदों में ना प्रबन्ध में
अलंकार ना अनुप्रास में ।
खोज ले कोई राम मिलेंगे
दीन जनों की भूख-प्यास में ।

४. वह देश कौन-सा है ?

मनमोहिनी प्रकृति की जो गोद में बसा है,
सुख स्वर्ग-सा जहाँ है, वह देश कौनसा है ?
जिसका चरण निरन्तर रतनेश धो रहा है,
जिसका मुकुट हिमालय, वह देश कौनसा है ?
नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं,
सींचा हुआ सलोना, वह देश कौनसा है ?
जिसके बड़े रसीले फल, कंद, नाज, मेवे,
सब अंग में सजे हैं, वह देश कौनसा है ?
जिसके सुगंध वाले सुन्दर प्रसून प्यारे,
दिन-रात हँस रहे हैं, वह देश कौनसा है ?
मैदान, गिरि, वनों में हरियालियाँ लहकतीं,
आनंदप्रद जहाँ हैं, वह देश कौनसा है ?
जिसकी अनंत धन से धरती भरी पड़ी है,
संसार का शिरोमणि वह देश कौनसा है ?
सबसे प्रथम जगत में जो सभ्य था यशस्वी,
जगदीश का दुलारा वह देश कौनसा है ?
पृथ्वी निवासियों को जिसने प्रथम जगाया,
शिक्षित किया, सुधारा, वह देश कौनसा है ?
जिसमें हुए अलौकिक तत्त्वज्ञ ब्रह्म ज्ञानी,
गौतम, कपिल, पतंजल, वह देश कौनसा है ?
छोड़ा स्वराज तृणवत् आदेश से पिता के,
वह राम थे जहाँ पर, वह देश कौनसा है ?
निस्वार्थ शुद्ध प्रेमी भाई भले जहाँ थे,
लक्ष्मण भरत सरीखे, वह देश कौनसा है ?
देवी पतिव्रता श्री सीता जहाँ हुई थीं,
माता-पिता जगत का वह देश कौनसा है ?
आदर्श नर जहाँ पर थे बाल ब्रह्मचारी,
हनुमान, भीष्म, शंकर, वह देश कौनसा है ?
विद्वान् वीर, योगी, गुरु राजनीतिकों के,
श्रीकृष्ण थे जहाँ पर, वह देश कौनसा है ?
विजयी बली जहाँ के बेजोड़ शूरमा थे,
गुरु द्रोण, भीम, अर्जुन, वह देश कौनसा है ?

जिसमें दधीचि, दानी हरिचन्द, कर्ण से थे,
सब लोक का हितैषी वह देश कौनसा है ?
वाल्मीकि व्यास ऐसे जिसमें महान् कवि थे,
श्रीकालिदास वाला वह देश कौनसा है ?
निष्पक्ष न्यायकारी जन जो पढ़े लिखे हैं,
वे सब बता सकेंगे, वह देश कौनसा है?
हैं तीस कोटि भाई, सेवक, सपूत जिसके,
भारत सिवाय दूजा वह देश कौनसा है !

५. स्वदेश-गीत

सबको स्वतंत्र करदे यह संगठन हमारा।
छूटे स्वदेश ही की सेवा में तन हमारा॥

जब तक रहे फड़कती नस एक भी बदन में।
हो रक्त बूंद भर भी जब तक हमारे तन में॥
छीने न कोई हमसे प्यारा वतन हमारा।
छूटे स्वदेश ही की सेवा में तन हमारा॥
कोई दलित न जग में हमको पड़े दिखाई।
स्वाधीन हों सुखी हों सारे अछूत भाई॥
सबको गले लगाले यह विशुद्ध मन हमारा।
छूटे स्वदेश ही की सेवा में तन हमारा॥

अचरज नहीं कि साथी भग जाएँ छोड़ भय में।
घबरायें क्यों, खड़े हैं भगवान जो हृदय में॥
धुन एक ध्यान में है विश्वास है विजय में।
हम तो अचल रहेंगे तूफ़ान में प्रलय में॥
कैसे उजाड़ देगा कोई चमन हमारा ?
छूटे स्वदेश ही की सेवा में तन हमारा॥
हम प्राण होम देंगे, हँसते हुए जलेंगे।
हर एक साँस पर हम आगे बढ़े चलेंगे॥
जब तक पहुँच न लेंगे तब तक न साँस लेंगे।
वह लक्ष्य सामने है पीछे नहीं टलेंगे॥
गायें सुयश खुशी से जग में सुजन हमारा।
छूटे स्वदेश ही की सेवा में तन हमारा॥

६. सत्याग्रह-गीत

मैं अमर हूँ, मौत से डरता नहीं,
सत्य हूँ, मिथ्या डरा सकती नहीं।
मैं निडर हूँ शस्त्र का क्या काम है,
मैं अहिंसक हूँ न कोई शत्रु है॥
शस्त्र लेना निर्बलों का काम है,
सत्य का तो शस्त्र केवल प्रेम है।
प्रेम में मैं भूमि स्वर्ग समुद्र को
एक कर दूँगा हृदय के रूप मे॥
पीस लो दुख में पिसूँगा तो सही,
किंतु अंजन आँख का बन जाऊँगा।
दृष्टि होगी सौ गुनी संसार की,
तुम कहाँ पाओगे छिपने की जगह॥
चाहते हो ख़ाक करना ही मुझे,
आग में धरकर तपाकर देखलो।
शुद्ध सोना सा कढ़ूँगा जब कभी
दाम पहले से बहुत बढ़ जायेगा॥
काट लो सिर, दर्द सिर का लो मिटा,
भार कंधे का हमारा भी हटे।
हूँ दिये की लौ इसे मत भूलना,
फिर उजाला और भी हो जायगा॥
सत्य कहने से न रुकती जीभ है,
काँपते क्यों हो? इसे ही काट लो।
मैं कलम हूँ, एक मेरी जीभ से,
क्या करोगे जब बढ़ेंगी सैंकड़ों॥
खूब चारों ओर काँटे दो बिछा,
मर मिटूँ मैं काट लो जी की कसक।
किन्तु आकर देख जाना एक दिन,
मैं मिलूँगा फूल सा हँसता हुआ॥
क्रोध ने जीता तुम्हें है सब तरह,
कैद में तुम क्रोध की हो हर घड़ी॥
किन्तु मैं जीते हुए हूँ क्रोध को,
तब कहो मैं किसलिए तुमसे डरूँ?

कौन हो तुम ? मौत का मैं दूत हूँ।
क्या करोगे, मौत से दूंगा मिला।
है कहाँ वह जन्म भर की संगिनी,
मित्र लो तुम प्राण यह उपहार में ।।

७. प्रेम

प्रेम विचित्र वस्तु है जग में अद्भुत शक्ति निधान।
निद्रा में जागृति, जागृति में है यह नींद समान।
प्रेम नशा जब छा जाता है आँखों में भरपूर।
सोना जगना दोनों उनसे हो जाते हैं दूर।

गंध विहीन फूल हैं जैसे चन्द्र चंद्रिकाहीन।
यों ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम-विहीन।
प्रेम स्वर्ग है स्वर्ग प्रेम है प्रेम अशंक अशोक।
ईश्वर का प्रतिबिंब प्रेम है प्रेम हृदय आलोक।

जग की सब पीड़ाओं से है होता हृदय अधीर।
पर मीठी लगती है उर में सत्य प्रेम की पीर।
व्याकुल हुआ प्रेम-पीड़ा से जिसका कभी न प्राण।
भाग्यहीन उस निष्ठुर का है उर सचमुच पाषाण।

जिस पर दया-दृष्टि करते हैं मंगलमय भगवान।
पूर्ण प्रेम पीड़ा से पीड़ित होता है वह प्राण।
जिसने अनुभव किया प्रेम की पीड़ा का आनन्द।
उससे बढ़ है कौन जगत में सुखी और स्वछन्द।

प्रेमोन्मत्त हृदय में रहता है न विरोध न क्रोध।
दुर्गुण नहीं प्रेम-पथ का कर सकता है अवरोध।
मधुर प्रेम-वेदना-मुग्ध जन सुख-निद्रामय मस्त।
हैं देखते प्रेम-छवि दृग भर फिरकर जगत समस्त।

फूल पंखड़ी में, पल्लव में प्रियतम-रूप विलोक।
भर जाता है महामोद से प्रेमी का उर-ओक।
कली देख करने लगता है वह उन्मत्त प्रलाप।
देखें कब तक इन पत्तों में लुके रहेंगे आप।

प्रेम-भरे अधखुले दृगों से शशि को देख सहास।
प्रेमी समझ मुग्ध होता है प्रियतम-हास-विकास।
उसे प्रेममय लगता है सब सचराचर संसार।
प्रेम-मग्न करता है वह नित प्रेमोद्यान विहार।

प्रेम-वेदना-व्यथित हृदय से मथित प्रेम की आह।
कढ़कर भूतल में भरती है नवजीवन उत्साह।
करुणा-भरे प्रेम के आँसू ढलकर सुधा समान।
सींच दया की जड़ देते हैं जग को आश्रय-दान।

जन-जन में प्रेमी को दिखती है प्रियतम की कांति।
इससे उसे लोक-सेवा में मिलती है अति शांति।
पीड़ित की पीड़ा, भूखे की क्षुधा, तृषित की प्यास।
उदासीनता निराश्रयों की आशा-रहित उसास।

कुशित जाति के उन्नति-पथ के कंठक चुनकर दूर।
प्रेमी परम तृप्त होता है आह्लादित भरपूर।
दया नहीं, कर्त्तव्य नहीं, वह नहीं किसी का दास।
है चाहता देखना वह तो प्रियतम रूप-विकास।

रूप कहाँ है ? आर्त्त मुखों पर प्रकृति हर्ष का हास।
होता है जब उदित, वही है प्रियतम-रूप-विकास।

८. उद्बोधन

जिस पर गिरकर उदर-दरी से तुमने जन्म लिया है।
जिसका खाकर अन्न, सुधा सम नीर, समीर पिया है।
जिस पर खड़े हुए, खेले, घर बना बसे, सुख पाये।
जिसका रूप विलोक तुम्हारे दृग, मन, प्राण जुड़ाये।

वह सनेह की मूर्ति दयामयि माता तुल्य मही है।
उसके प्रति कर्त्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है ?
हाथ पकड़ कर प्रथम जिन्होंने चलना तुम्हें सिखाया।
भाषा सिखा, हृदय का अद्भुत रूप-स्वरूप दिखाया।

जिनकी कठिन कमाई का फल खाकर बड़े हुए हो।
दीर्घ देह ले बाधाओं में निर्भय खड़े हुए हो।

जिनके पैदा किये, बुने वस्त्रों से देह ढके हो।
आतप वर्षा शीतकाल में पीड़ित हो न सके हो।

क्या उनका उपकार-भार तुम पर लवलेश नहीं है ?
उनके प्रति कर्त्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है ?
सतत ज्वलित दु:ख-दावानल में जग के दारुन रन में।
छोड़ उन्हें कायर बनकर तुम भाग बसे निर्जन में !

मस्तक ऊँचा हुआ तुम्हारा कभी जाति-गौरव से ?
अगर नहीं, तो देह तुम्हारी तुच्छ अधम है शव से।
भीतर भरा अनंत विभव है उसकी कर अवहेला।
बाहर सुख के लिए अपरिमित तुमने संकट झेला।

परम विचित्र मंत्र यह जग है उसी शक्ति से चलता।
मत करना अभिमान मिले जो तुमको कभी सफलता।
यद्यपि सब जग का हित-चिंतन सबको आवश्यक है।
पर प्रत्येक मनुज पर पहला देश-जाति का हक है।

पैदा कर जिस देश-जाति ने तुमको पाला-पोसा।
किये हुए है वह निज हित का तुमसे बड़ा भरोसा।
उससे होना उऋण प्रथम है सत्कर्त्तव्य तुम्हारा।
फिर दे सकते हो दुनिया को शेष स्वजीवन सारा।

संदर्भिका

(अ) पं. रामनरेश त्रिपाठी का साहित्य :

(पुस्तक के दूसरे अध्याय के आरम्भ में उल्लिखित)

(आ) अन्य सहायक पुस्तकें :

1. रामनरेश त्रिपाठी और उनका साहित्य—डॉ. राममूर्ति शर्मा
2. पं. रामनरेश त्रिपाठी : एक युग एक व्यक्ति—सं. जगदीश प्रसाद पांडेय 'पीयूष'
3. मैं इनसे मिला—पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचंद्र शुक्ल
5. साहित्यालाप—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
6. सम्मेलन-पत्रिका (श्रद्धांजलि विशेषांक)
7. राष्ट्रभाषा-संदेश (15 जुलाई 1980)